क्रम.स.	विषयसूची	पृष्ठ.स.
१	श्रीकृष्ण कृपाकटाक्ष स्तोत्र	३
२	"श्रीहरिचरणाष्टक"	५
३	नाम-महिमा (साध्वी माधुरीजी)	७
४	श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ (व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी)	१०
५	श्रीमद्भागवत-रसामृत (व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी)	१३
६	धाम-महिमा (डॉ रामजीलालजी शास्त्री)	१५
७	श्रीराधासुधानिधि (साध्वी पद्माक्षीजी)	१८
८	गौ-महिमा (साध्वी सुगीताजी)	२०
९	गोपी-गीत (साध्वी दिव्याजी)	२२
१०	अनन्याश्रित भक्त श्रीदामापन्तजी (भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी)	२५
११	श्रीमद्भगवद्गीता (संतश्री ध्रुवदासजी भक्तमाली)	२८
१२	प्रातःकालीन सत्संग (संतश्री भामिनीशरणजी)	३०
१३	DHAAM NISHTHAA (Raviji Monga,New-Delhi)	३१

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में, विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो |

नीलम का नगीना मेरा श्याम सलौना |
सोने की अंगूठी राधे चोरी कहूँ हो ना |
या मुंदरी को वो ही पहरे बड़ी रसीली होय,
मुंदरी पहरे सब जग भूलै, भूलै रोना धोना |
मुंदरी पहरी ब्रज की गोपीं छोड़ के दुनियाँ सारी,
प्रेम छकीं नाचैं मतवारी होनी होय सो होना |
ऐसी सुंदर जोरी प्यारी तीन लोक में नाहीं,
नजर न लागै काहू की ना लगै काहू को टोना ||
(-पूज्य श्री बाबा महाराज कृत, 'रसिया रासेश्वरी' पुस्तक से संगृहीत)

संरक्षक – श्री राधा मान बिहारी लाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री,

मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558

"भगवान् का नाम, रूप, गुण, लीला, धाम व धामी ये सब एक ही हैं किन्तु रसिक पुरुषों ने इनमें से धाम को सबसे सहज और सरल बताया है |"

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्व के उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देनेमें जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्यन,यज्ञ,तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्यके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

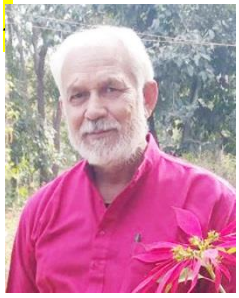

प्रकाशकीय

लोकसाहित्य में ब्रजभाषा का एक अलग ही महत्व है, इसमें भी ब्रज-वसुंधरा में लोकगीत या रसिया-गायिकी जीवन के विविध पहलुओं को लेकर चलते हैं परन्तु जैसा कि ब्रजभूमि भगवान् श्रीराधामाधवकी क्रीड़ाभूमि है, उनकी अनेक लीलाओं को रसिया के माध्यम से ब्रज के अनेक कवियों ने गाया है व अपनी लेखनी का आभूषण बनाया है | गत ६५ वर्षों में ब्रज-परम्पराओं व ब्रज-लीलाओं का न केवल अनुसंधान अपितु साक्षात् अनुभव करने वाले ब्रजरस रसिक संत पूज्य श्रीरमेशबाबा ने प्रत्येक ऋतु, भक्तिमय संस्कार व कृष्णरस में आबद्ध अपनी लोक रचनाओं को जनसाधारण के लिए सुलभ व रसदायी बनाने का कार्य कर **'रसिया रासेश्वरी'** नाम से एक दिव्य ग्रन्थ की रचना की है | इन रचनाओं को सारे ब्रज में लोग गाते हैं और अपने आराध्य राधामाधव की आराधना इस माध्यम से करते हैं | **'बरसाना रसमण्डप'** में जो आजकल एक दिव्य रासस्थली के रूप में भी विख्यात है, जहाँ नित्य यहाँ की ब्रजबालिकाओं द्वारा रसिया-गायन किया जाता है | यों तो मानमंदिर सेवा संस्थान अहिर्निश लोक कल्याण की साधना में लगा हुआ है, फिर भी 'साधन' शब्द एक कष्टसाध्य कर्म का द्योतक है परन्तु ब्रजरसिकों ने कहा है – **'नाँच-गाय रासहिं मिले, करि वृन्दावन वास |'** भगवत्प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट एवं सरलतम साधन नृत्य-गान ही है, गोपी-गीत इसका जाग्रत उदाहरण है | रास से अन्तर्धान हुए श्रीकृष्ण की पुनः प्राप्ति गोपियों द्वारा गाये गए गीतों के माध्यम से ही हुई, इसलिए नृत्य-गान का बहुत बड़ा महत्व है | प्रेमी आराधक जन जब भक्तिरस में निमग्न होकर नृत्य-गान करते हैं तो सैकड़ों कल्पों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः । स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेश्वपि ॥

(स्कंदपुराण ७.४/२३/७४)

नृत्य-गायन का अद्भुत संयोग भगवत्प्राप्ति का हेतु तो है ही, साथ ही उसकी लोकप्रियता भी बहुत है | देश के कोने-कोने से आज रास-रस, रसिया का आनंद लेने, इसका दर्शन करने नित्य बहुत लोग आया करते हैं | ब्रज के परम विरक्त संत की इस अहैतुकी कृपा का जिक्र मैंने यहाँ से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका **"मान मंदिर बरसाना"** में करना उचित समझा क्योंकि सभी को इस अद्भुत रस का पान करने का सौभाग्य मिल सके, साथ ही हम पत्रिका के मुख्य-पृष्ठ पर रसिया गान एवं नृत्य की यहाँ की कुछ झलकियाँ भी अंकित कर आपको प्रेषित कर रहे हैं |

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक,मानमंदिर सेवा संस्थान

(श्रीशंकराचार्यजी द्वारा संरचित)

श्रीकृष्ण कृपाकटाक्ष स्तोत्र

भजे व्रजैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं,
स्वभक्तचित्तरंजनं सदैव नन्दनन्दनम् ।
सुपिच्छगुच्छमस्तकं सुनादवेणुहस्तकं,
अनंगरंगसागरं नमामि कृष्णनागरम् ॥१॥

भावार्थ – व्रजभूमि के एकमात्र आभूषण, समस्त पापों को नष्ट करने वाले तथा अपने भक्तों के चित्त को आनन्द देने वाले नन्दनन्दन को सदैव भजता हूँ, जिनके मस्तक पर मोरमुकुट है, हाथों में सुरीली बांसुरी है तथा जो प्रेम-तरंगों के सागर हैं, उन नटनागर श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करता हूँ।

मनोजगर्वमोचनं विशाललोललोचनं,
विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम् ।
करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं,
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्ण वारणम् ॥२॥

भावार्थ – कामदेव का मान मर्दन करने वाले, बड़े-बड़े सुन्दर चंचल नेत्रों वाले तथा व्रजगोपों का शोक हरने वाले कमलनयन भगवान् को मेरा नमस्कार है, जिन्होंने अपने करकमलों पर गिरिराज को धारण किया था तथा जिनकी मुसकान और चितवन अति मनोहर है, देवराज इन्द्र का मान-मर्दन करने वाले, गजराज के सदृश मत्त श्रीकृष्ण भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ

कदम्बसूनकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलं,
व्रजांगनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम् ।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया,
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम् ॥३॥

भावार्थ – जिनके कानों में कदम्बपुष्पों के कुंडल हैं, जिनके अत्यन्त सुन्दर कपोल हैं तथा व्रजबालाओं के जो एकमात्र प्राणाधार हैं, उन दुर्लभ भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ; जो गोपगण और नन्दजी के सहित अति प्रसन्न यशोदाजी से युक्त हैं और एकमात्र आनन्ददायक हैं, उन गोपनायक गोपाल को नमस्कार करता हूँ।

सदैव पादपंकजं मदीय मानसे निजं,
दधानमुक्तमालकं नमामि नन्दबालकम् ।
समस्तदोषशोषणं समस्तलोकपोषणं,
समस्तगोपमानसं नमामि नन्दलालसम् ॥४॥

भावार्थ – जिन्होंने मेरे मनरूपी सरोवर में अपने चरणकमलों को स्थापित कर रखा है, उन अति सुन्दर अलकों वाले नन्दकुमार को नमस्कार करता हूँ तथा समस्त दोषों को दूर करने वाले, समस्त लोकों का पालन करने वाले और समस्त व्रजगोपों के हृदय तथा नन्दजी की वात्सल्य लालसा के आधार श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करता हूँ।

भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं,
यशोमतीकिशोरकं नमामि चित्तचोरकम् ।
दृगन्तकान्तभंगिनं सदा सदालिसंगिनं,
दिने-दिने नवं-नवं नमामि नन्दसम्भवम् ॥५॥

भावार्थ – भूमि का भार उतारने वाले, भवसागर से तारने वाले कर्णधार श्रीयशोदाकिशोर चित्तचोर को मेरा नमस्कार है। कमनीय कटाक्ष चलाने की कला में प्रवीण सर्वदा दिव्य सखियोंसे सेवित, नित्य नए-नए प्रतीत होने वाले नन्दलाल को मेरा नमस्कार है।

गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपापरं,
सुरद्विषन्निकन्दनं नमामि गोपनन्दनं ।
नवीन गोपनागरं नवीनकेलि-लम्पटं,
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम् ॥६॥

भावार्थ – गुणों की खान और आनन्द के निधान कृपा करने वाले तथा साक्षात् कृपा पर भी कृपा करने के लिए तत्पर देवताओं के शत्रु दैत्यों का नाश करने वाले गोपनन्दन को मेरा नमस्कार है । नवीन-गोप सखा नटवर नवीन खेल खेलने के लिए लालायित, घनश्याम

अंग वाले, बिजली सदृश सुन्दर पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण भगवान् को मेरा नमस्कार है।

समस्त गोप मोहनं, हृदम्बुजैक मोदनं,
नमामिकुंजमध्यगं प्रसन्न भानुशोभनम्।
निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं,
रसालवेणुगायकं नमामिकुंजनायकम् ॥७॥

भावार्थ –समस्त गोपों को आनन्दित करने वाले, हृदयकमल को प्रफुल्लित करने वाले, निकुंज के बीच में विराजमान, प्रसन्नमन सूर्य के समान प्रकाशमान श्रीकृष्ण भगवान् को मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण अभिलिषित कामनाओं को पूर्ण करने वाले, बाणों के समान चोट करने वाली चितवन वाले, मधुर मुरली में गीत गाने वाले, निकुंजनायक को मेरा नमस्कार है।

विदग्ध गोपिकामनो मनोज्ञतल्पशायिनं,
नमामि कुंजकानने प्रवृद्धवह्निपायिनम्।
किशोरकान्ति रंजितं दृगंजनं सुशोभितं,
गजेन्द्रमोक्षकारिणं नमामि श्रीविहारिणम् ॥८॥

भावार्थ–चतुरगोपिकाओं की मनोज्ञ तल्प पर शयन करने वाले, कुंजवन में बढ़ी हुई विरह अग्नि को पान करने वाले, किशोरावस्था की कान्ति से सुशोभित अंग वाले, अंजन लगे सुन्दर नेत्रों वाले, गजेन्द्र को ग्राह से मुक्त करने वाले, श्रीजी के साथ विहार करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र को नमस्कार करता हूँ।

स्तोत्र-पाठ का फल

यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा,
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम्।
प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्,
भवेत्स नन्दनन्दने भवे भवे सुभक्तिमान ॥९॥

प्रभो ! मेरे ऊपर ऐसी कृपा हो कि जहां-कहीं जैसी भी परिस्थिति में रहूँ, सदा आपकी सत्कथाओं का गान करूँ। जो पुरुष इन दोनों-राधा कृपाकटाक्ष व श्रीकृष्ण कृपाकटाक्ष अष्टकों का पाठ या जप करेगा, वह जन्म-जन्म में नन्दनन्दन श्यामसुन्दर की भक्ति से युक्त होगा और उसको साक्षात् श्रीकृष्ण मिलते हैं|

स्वयं भगवान् ने सेवा करके यह दिखाया कि सेवा केवल एक साधन ही नहीं है अपितु वह एक मानसी पाप व तापों को धोने वाली गंगा है।

"संत" चलते-फिरते तीर्थ

तीर्थ तो केवल शरीर के पाप ही धो सकते हैं परन्तु ऐसे संत मन के पापों को भी धो देते हैं। संत तो चलते-फिरते तीर्थ हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है - **देवाः क्षेत्राणि.....तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥** (भा. १०/८६/५२) देव-दर्शन, तीर्थ-दर्शन आदि से तभी लाभ होगा जब आप सत्संग करेंगे। सत्संग से चिपके रहोगे तो तुम्हारे सब पाप, अशुभ, कष्ट, भोग आदि सब नष्ट हो जायेंगे। जैसे - पेड़ की जड़ें दिखाई नहीं देतीं पर वे आस-पास का सब पानी खींच लेती हैं। उसी तरह विषय मन में घुसकर सब कुछ लूट लेते हैं और जीव को पता भी नहीं चलता। मन तो विषयों को छोड़ना ही नहीं चाहता, फिर मन अंतर्मुख कैसे हो? तो भगवान् ने कहा कि मन इस तरह से अंतर्मुख हो सकता है, जैसे कोई जीव दलदल में फँस गया है वह जितना हाथ-पाँव मारेगा उतना ही दलदल में और घुसता चला जायेगा। वैसे ही जितना साधन करोगे उतना ही दलदल में और घुसते ही जाओगे लेकिन अगर एक तीसरा आदमी एक रस्सी उस दलदल में फँसे जीव को फेंक दे तो वह दलदल से बाहर निकल सकता है। जो तीसरा तत्त्व है वह है भगवान्; जो रस्सी है वह है संत। भगवान् कृपा करके संत रूपी रस्सी को जीव के पास अगर भेज दें तो उसका निश्चित कल्याण हो जाता है|

"श्रीहरिचरणाष्टक"

(प. पूज्यश्री बाबामहाराज द्वारा संरचित)

कलाप-काल जाहि के भ्रमद्भ्रुवाणु सों भगैं |
अपांग अंकुराव लोक मंगलावली जगैं ||
रणल्ललाम नूपुरैं अनन्त रत्न हैं जरे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||१||

भावार्थ :- जिनके घूमते हुए भ्रू-भंग मात्र से ही काल के अनंत समूह भी भय-वश स्थिर नहीं रह पाते, जिनके नेत्र की मधुर कटाक्ष ही अंकुर-रूपिणी होकर लोकों में अनेक मंगल समूहों को उत्पन्न करती है, तथा जिनके बजते हुए सुन्दर नूपुरों में अनेक भास्वर-रत्न जटित हैं, उन आनन्द स्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

प्रकाम-कामपूरिता ब्रजाङ्गना कुमुद्वती |
प्रफुल्लचन्द्र शुभ्रज्योति चक्रबाल धारती ||
नख-प्रभासुमण्डलीक सोडु व्योम देखि रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||२||

भावार्थ :- अनादिकाल से श्रुतिरूपा गोपियों की रास विलासादि की जो कामना संचित थी, उससे पूर्ण कुमुदनीरूपा ब्रजदेवियों की संतुष्टि के लिए जो दशनखचन्द्र प्रभा है, उसके मंडल से युक्त तथा जिसमे नूपुरादि आभूषण के दीप्तिमान् अनेक रत्न ही तारागण समुदाय हैं, ऐसे गगनरूपी श्रीचरणोंको देखो, उन आनन्द स्वरूप श्रीनंदकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

प्रचण्ड किल्बिषप्रवाह ओघशोषि शोभितैं |
निशापतत्तुषार जाड्यसंसि भानु कोबिदैं ||
मलीन पंकनाशि वायु सों त्रिधा जु मोहि रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||३||

भावार्थ :- दारुण पाप समूह की धारा को सुखाकर शोभित होने वाले एवं रात्रिकालीन गिरते हुए ओसों की ठंड से उत्पन्न जड़ता को नष्टकर निर्मल चैतन्यदायक शरत्कालीन सूर्य की भाँति विचक्षण श्रीचरणों से संस्पृष्ट त्रिविध समीर के सुखस्पर्श से मोहित हो जाओ | कामनाओं के हृदयस्थ कषाय नष्ट हो जायेंगे | ऐसे आनन्द स्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

मनोज्ञपाद लालिमा तलैं सदा विराजती |
उतै जु अङ्ग नीलिमा अनन्तता प्रसारती ||
नखावदात कान्ति की त्रिवेणि मे जू डूबि रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||४||

भावार्थ :- सुन्दर चरणों के तलुओं में सदा रंजित लालिमा ही रक्तवर्णा सरस्वती नदी है, ऊपर की ओर श्रीअंगों की नीली कांति ही नीलवर्णा श्रीयमुना हैं | दशनखचंद्र की दुग्ध फेनोज्ज्वल श्वेत कान्ति ही शुभ्रवर्णा श्रीगंगा हैं | श्रीचरणों की इस ज्योतिष्मती कान्ति की त्रिवेणी के संगम में अवगाहन करो | उन

भगवान् तीन तरह से कृपा करते हैं। एक कृपा साक्षात् दर्शन देकर करते हैं, दूसरी कृपा मन से मंगल चाहकर करते हैं, जैसे कि अनेक निमित्त बना देना, बिना किसी प्रयत्न के कार्य बना देना और तीसरी कृपा संस्पर्श से करते हैं। जैसे मछली अण्डे को दूर से देखती है और उसका पालन करती है। कछुआ दूर से ही अपने अण्डे का चिंतन करता है, इसी से अण्डे का पालन होता है और वह बढ़ता है।

आनन्द स्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

मिलिन्द भक्त वृन्द हेतु राजती सुचारुता |
पराग पुञ्ज कान्ति वास तोष की सुपद्मता ||
अनन्तता विचित्रता प्रफुल्लता निहारि रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||५||

भावार्थ :- जिन श्रीचरणों में भक्त रूपी भ्रमर समूहों के हेतु सुन्दरता मकरन्द रस राशि, प्रभा, सुगन्धि एवं तुष्टि की सदा असमोर्ध्व प्रधानता रहती है, ऐसे अनंत एवं विचित्र भाँति से कमलवत्-प्रफुल्लित श्रीचरणों को देखो | उन आनन्द स्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

मुनीन्द्र सों फनीन्द्र सों सुरेन्द्र सों सुपूजितैं |
चतुर्मुख त्रिलोचनादि शीश सों प्रवन्दितैं ||
ऋचान के हियान के अभीष्ट को जु खोजि रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||६||

भावार्थ :- जिन श्रीचरणों का पूजन नारदादि मुनीन्द्र अनन्त शेषादि फणीन्द्र एवं सुरराज इंद्र भी सदा किया करते हैं | जिन श्रीचरणों की वन्दना ब्रह्मा एवं शिव आदि भी अपने उत्तमाङ्गो से धारण करके किया करते हैं | जो श्रीचरण श्रुतियों के गुप्त हार्द-रहस्य होने के कारण ही एकमात्र वेदान्तैकवेद्य हैं, उन्हीं श्रीचरणों का अन्वेषण करो | ऐसे आनन्दस्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

दयालु कृपालुता जनार्थ हार्द द्रावित |
रसार्द्रता रसालता सुभक्त भाव भावित ||
अखण्ड प्रेम सिन्धुता सुचित ह्वै विलोडिरे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||७||

संत के संग से ही धाम, नाम व सेवा का लाभ मिलेगा। इसलिए स्वतंत्र मत रहो, धाम में भी सन्तों के आश्रय में ही रहो।

भावार्थ :- वे श्रीचरण-दया, कृपा भक्तजनों के हेतु वात्सल्यवश स्निग्धता, रस की पूर्णता, रसस्वरूपता, भाववश भक्तजनों की भी भजनीयता "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" आदि अनन्त दिव्य गुणों के भंडार हैं तथा जहाँ अनंत प्रेम का समुद्र आंदोलित हो रहा है, उसमें स्वस्थ चित्त होकर आलोडन करो | ऐसे आनन्दस्वरूप श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

अनन्त-ब्रह्म अंड सो विशिष्ट प्रेमदायिनी |
ललाम बालराधिका सुरास नित्य कारिणी ||
रसेश्वरी पदाब्ज संग नृत्य शील भाव रे |
अनन्द नन्दलाल के पदारबिन्द बन्दि रे ||८||

भावार्थ :- अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों से भी परे सद्धाम के दिव्य प्रेम की एकमात्र दात्री, अनंत सौन्दर्य वाली, नित्य किशोरी श्रीराधा जो कि चिन्मय धाम श्रीमद्वृदावन में नित्य रास की मंडलेश्वरी हैं और वे ही इस रास-रस की भी ईश्वरी हैं, उनके श्रीचरण-कमलों के संग नृत्य करना ही जिन श्रीकृष्ण-चरणों का नित्य स्वभाव है – उनकी भावना करो | ऐसे आनन्दमय श्रीनन्दकुमार के चरण-कमलों की वन्दना करो |

जब प्रभु कृपा करते हैं तो धन आदि देने से पहले 'मैं-मेरा' की वृत्ति हटा देते हैं। प्रभु ने सुदामा जी को धन तो दिया परन्तु देने से पहले उनमें 'मेरा-तेरा' की भावना बिल्कुल खत्म कर दी। भगवान् अपने भक्त का सदा भला चाहते हैं। नारद जी ने भगवान् को नारी-विरह का श्राप दिया परन्तु भगवान् ने नारद जी का कल्याण ही किया, उन पर रुष्ट नहीं हुए।

नाम-महिमा

(दीनता से दीनानाथ की दया)

श्रीबाबा महाराज के सत्संग (२१/५/२०१०) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी माधुरीजी, मानमंदिर, बरसाना)

रसिकों की वाणी से समझो, जो सच्चे रसिक हैं, उन्होंने कहा है -

कहत सुनत बहुतै दिन बीते, भक्ति न मन में आई |
स्याम कृपा बिन साधु संग बिन, कहु कौने रति पाई ||

स्वयं को रसिक कहने वाले पाखण्डी लोग कहते हैं –

'मैं जानी सबहिन्ह न जानी, औरन सबै कचाई |'

मैं ही रस का ज्ञाता हूँ और कोई रसिक नहीं है, ऐसी जो बुद्धि होती है, ये रसिकता नहीं है और ऐसे लोग अभिमान के नशे में कहते हैं -

'भोरे भक्त हुते पहले के, हमरे अधिक चतुराई |'

पहले के सब कच्चे रसिक थे, हम पक्के हैं, हम चतुर रसिक हैं, ऐसे बहिर्मुखी दाम्भिक लोग इस तरह की बातें लोगों से कहकर उन्हें संकीर्ण बना करके मिथ्या ज्ञातृत्व का मद पैदा कर देते हैं; वर्तमानकाल में ऐसा सम्प्रदायों में दिखाई देता है | इसलिए विशुद्ध भक्ति में बाधक विकारों से सतत् सावधान रहने के लिये संत, महापुरुषों व आचार्यों ने 'वास्तविक रसिकों की रहनी' को ग्रन्थों में लिखा है | राधावल्लभ सम्प्रदाय की सेवक वाणी में लिखा है –

'कांचे धर्मिन के सुनो धर्म धर्मी धरम मर्म न जानत |'

जो कच्चे धर्मी हैं, वे केवल रस की बात बनाते हैं, उनकी क्रिया में रस नहीं है | स्वामी हरिदासजी ने कहा है –

हे हरि ! मोसो न बिगारन को, तोसो न संवारन सो,
मोहि तोहि परी होड़ |

हे हरि ! हम आपको क्या जान सकते हैं ? हम तो जीव हैं, हमेशा अपना विनाश करते हैं, हम साधन क्या कर सकते हैं, हमारा इतना ही स्वरूप है कि हम सदा बिगाड़ते रहते हैं, हमें कुछ ज्ञान नहीं है और हे नाथ ! आप जैसा सँभालने वाला सर्वशक्तिमान कोई नहीं है |

श्रुतियों (वेदों), पुराणों, रामायण, रसिकों की वाणियों में बताया गया है कि जीव जब समझता है कि हम ज्ञाता हैं, हममें ज्ञातृत्व है तो यह अविद्या है | जीव कैसे जान सकता है ? न अपने आप को, न नाम की महिमा, न भगवान् की महिमा और न ही भक्त की महिमा को जान सकता है, इसलिए हमेशा होश में रहना चाहिए | किष्किन्धाकाण्ड के आरम्भ में हनुमानजी ने अपने पहले परिचय में भगवान् राम से कहा -

तव माया बस फिरउँ भुलाना |
ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना || (रा. किष्किन्धा का. -२)

मैं आपको कैसे पहिचान सकता हूँ ? **'एक मंद मैं मोहबस'** मैं मंद हूँ, मोह ग्रसित जीव हूँ, कुटिल हूँ |

हनुमान जी अपने को कुटिल-कपटी बता रहे हैं और हमलोगों को यदि कोई कुटिल-कपटी बता दे तो लट्ठ बजा देंगे और कहेंगे कि हम कैसे कपटी, तू कपटी तेरा बाप कपटी | ऐसा इसलिए कहते-करते हैं क्योंकि हम जैसे लोग 'अहम् की मूर्ति' हैं, हमारे अंदर रोम-रोम में 'अहं' भरा हुआ है | जब हृदय में भक्ति आ जाती है तो दैन्य भाव आ जाता है |

इसलिए हनुमानजी कह रहे हैं –

एक मंद मैं मोह बस कुटिल हृदय अग्यान |
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान् ||

हे नाथ ! कोई जीव आपको कैसे जान सकता है ? हर जीव आपकी माया से मोहित है और अगर कोई स्वयं के लिए कहे कि हम जानते हैं तो ये कैसी अज्ञान की बात है !!

नाथ जीव तव माया मोहा |

सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा |
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे |
सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे || (श्रीरामचरितमानस, किष्कि. - ३)

श्रीहनुमानजी कहते हैं कि मैं अवगुणों का भंडार हूँ लेकिन आप मुझको भूलो मत | जितने अनंत जीव संसार में हैं उनमें सबसे अधिक निकृष्ट मैं ही हूँ | हनुमानजी जो शिव जी के अवतार हैं, ईश्वर हैं लेकिन वह कह रहे हैं कि जितने दुनिया में जीव होंगे, उनमें सबसे ज्यादा मैं ही नीच हूँ|

तापर मैं रघुबीर दोहाई |
जानउँ नहिं कछु भजन उपाई ||

'राम की सौगंध खाकर कह रहा हूँ कि न मैं भजन जानता हूँ, न कोई उपाय जानता हूँ|' ये है सच्चा दैन्य; हनुमान जी कहते हैं कि मैं कुछ नहीं जानता, केवल इतना जानता हूँ कि

'सेवक सुत पति मातु भरोसें |
रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें ||'

'सुत' अर्थात् तुरंत का जन्मा बच्चा, माँ के भरोसे पड़ा रहता है, नहला दिया तो नहा लेता है, खिला दिया तो खा लिया, मल धो दिया तो धो दिया, नहीं तो मल में ही पड़ा रहता है | उसी तरह से सेवक और सुत अर्थात् गोद के बच्चे की एक ही स्थिति होती है, एक ही गति होती है, यही भक्ति है | सेवक 'पति' अर्थात् स्वामी के भरोसे रहता है और बच्चा 'माँ' के | 'रहइ असोच' कोई चिंता नहीं करता, 'बनइ प्रभु पोसें' भगवान् उसका पोषण करते हैं, अगर हर समय इतना अधिक भरोसा हो जाये तो न मान होगा, न अपमान होगा, न सुख होगा, न दुःख होगा लेकिन ये सब जो विकार आते रहते हैं कि उसने हमको मूर्ख कह दिया, उल्लू कह दिया, उसने हमारी निंदा कर दी, स्तुति कर दिया, हमारा मान हो गया, अपमान हो गया | ये सब जितनी चीजें हैं, ये इसीलिए आती हैं क्योंकि हमारा भगवान् के प्रति दैन्य नहीं है, हम भगवान् की शरण में नहीं हैं, हम 'अहम्' की शरण में हैं क्योंकि ये सब बीमारियाँ 'अहम्' में पैदा होती हैं | भगवान् ने कहा कि यदि सच्चा समर्पण कर दोगे तो कामना और मान-अपमान की अनुभूतियाँ समाप्त हो जाएँगी | तुम्हारा समर्पण ही गलत है, वस्तुतः समर्पण है ही नहीं |

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥
(गीता ३/३०)

ये ऊपर का समर्पण है, ऊपरी मन से हम कहते हैं - हे प्रभु ! हम तुम्हारे हैं, सब कुछ आपका है किन्तु यह अध्यात्म चित्त का समर्पण नहीं है | अगर वह हो जाए तो **'निराशीर्निर्ममो'** अर्थात् कामना, वासना आदि सब बीमारियाँ समूलतः नष्ट हो जाएँगीं, 'निर्मम' अर्थात् ममतायें समाप्त हो जाएँगीं | हम कहते हैं कि हमारा अपमान हो गया, हमारी निंदा हो गई | वास्तव में समर्पण ही तुम्हारा नहीं है, केवल ऊपरी समर्पण है | समर्पण तो तुम्हारा अपने 'अहं' में है, तुम अपने आपको समझते हो कि हम प्रेमी हैं, हम भक्त हैं, ज्ञाता हैं, रसिक हैं, जबकि तुम कुछ नहीं हो | समर्पण ही अगर तुम्हारा सही हो जाए तो ये सब विकार समाप्त हो जाएँगे | यदि ये सब बीमारियाँ समाप्त हो गयीं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि समर्पण सही था और कहीं क्रोध के लक्षण होते हैं कि मुँह टेढ़ा हुआ, कहीं नाक टेढ़ी हुई, कभी आँख चढ़ रही है तो इन सब क्रियाओं से पता चलता है कि तुम्हारा समर्पण ही अभी गलत है, हुआ ही नहीं है, अभी तो तुम्हारा 'अहम्' में समर्पण है | इसलिए अपने में ज्ञातृत्व की अनुभूति होना कि हम जानते हैं, यह एक बीमारी है जो प्रायः सबके भीतर है |

अस्तु, दैन्यपूर्ण वचन कहने के बाद हनुमानजी प्रभु के चरणों में गिर पड़े और बोले – "हे नाथ ! मै संसार के समस्त प्राणियों में सर्वाधिक निकृष्ट हूँ | हे राम ! तुम्हारी सौगंध खाकर कहता हूँ कि कोई साधन-भजन मैं नहीं जानता हूँ|"

'अस कहि परेउ चरन अकुलाई |'

ऐसा कहकर हनुमानजी ने भगवान् के चरण पकड़ लिये अर्थात् इतना दैन्य आ गया और बोले - मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ, अब तो मैं एकमात्र आपके भरोसे हूँ, जैसे माता ही बच्चे का मल साफ़ करती है, नहीं तो बच्चा मल में लिपटा पड़ा रहता है, वैसे ही आप ही मेरी सुधि लीजिये अन्यथा मैं तो मल में लिपटा ही पड़ा हुआ हूँ | ये है सच्चा दैन्य | हनुमानजी की ऐसी दैन्य युक्त स्थिति देखकर भगवान् दौड़ पड़े | ऐसा जब दैन्य आ जाता है तब भगवान् मिलते हैं | जैसे ही हनुमानजी प्रभु के चरणों में गिरे हैं तब उनका दैन्य देखकर के –

तब रघुपति उठाइ उर लावा |
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ||

(श्रीरामचरितमानस, किष्कि. - ३)

भगवान् ने अपने नेत्रों के अश्रुओं से हनुमान जी को स्नान करा दिया | भगवान् इतने दयालु हैं लेकिन हमारा 'अहम्' हमें उनसे दूर रखता है | प्रभु करुणा के सागर इतने हैं कि आँसुओं से हनुमान जी को स्नान करा दिया | तनिक इस दया के बारे में सोचो और हम उस दया से दूर क्यों हैं क्योंकि हमारे अंदर 'ज्ञातृत्व का अहं' है कि हम बड़े ज्ञाता हैं, हम बड़े भक्त हैं, हम तत्त्व के ज्ञाता हैं, हम विरक्त हैं, हम परम रसिक हैं, हम प्रेमी हैं | ये सब चीजें हमें भगवान् से दूर कर देती हैं | ये सब इसलिए बताया गया कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि हम नाम की महिमा जान गये, जब 'राम न सकहि नाम गुन गाई |' तो हम-तुम कैसे नाम की महिमा जान जायेंगे या भक्त की महिमा हम-तुम कैसे जान जायेंगे, भक्त की महिमा जान जायेंगे तो क्या एक-दूसरे से मुँह सिकोड़ेंगे, द्वेष करेंगे ? भाव तो ऐसा होना चाहिए कि जिसके मुख से धोखे में भी भगवन्नाम निकले तो इससे रीझकर के उसके चरणों में तन-मन-वचन से समर्पित हो जाएँ |

"तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम |
वाके पग की पगतरी मोरे तन को चाम ||

लेकिन कमी हमारी भावनाओं में है, भगवान् की करुणा में कमी नहीं है | क्रमशः

ममाहंशून्य मति में ही सच्ची दीनता

श्रीबाबामहाराज द्वारा संध्याकालीन सत्संग (१७/२/२००८) से संग्रहीत

जब कोई 'मैं-मेरापन' छोड़कर के अपनी प्रशंसा करता है तो वह 'आत्म-प्रशंसा' नहीं है | प्रायः सभी भक्तजनों ने ऐसा किया है, जैसे - तुलसीदासजी जो कि दीनता की मूर्ति हैं, उन्होंने एक पद में लिखा है कि अरी माया ! तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती | **मैं तोहि अब जान्यो संसार |** बड़ा सुन्दर यह विचित्र पद है, गोस्वामी जी एक तरफ तो कहते हैं कि मैं अत्यंत नारकीय हूँ, धर्मध्वजी हूँ किन्तु इस सम्पूर्ण पद में उन्होंने अपनी प्रशंसा किया है | जबकि अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए | ये अपने ढंग का अलग पद है, उनकी दैन्य शैली से अलग है, इसमें वह कहते हैं – **बाँधि न सकै मोहि हरि के बल, प्रगट कपट आगार ||** अरी माया ! तू मुझको बाँध नहीं सकती है, तू कपटिन है, देखने में अच्छी लगती है, लेकिन जीव को नारकीय बना देती है | ये माया क्या है, इसको कपट कहा गया है | कपट क्या है ? 'कपट' माने बाहर से कोई दूसरा रूप है, भीतर से कोई दूसरा रूप है, इसको कपट कहते हैं; जैसे - माया के जितने सुख हैं, ये ऊपर से अच्छे लगते हैं किन्तु भीतर से विषैले होते हैं | अत्यधिक स्वादिष्ट भोजन आवश्यकता से अधिक कर लो तो खाने में तो बड़ा स्वाद आता है परन्तु परिणाम में बीमारियाँ पैदा हो जायेंगी, अपने आप बीमार हो जाओगे, मैथुनी भोग में अधिक लिप्त रहने का यह परिणाम होगा कि तुम्हारा शरीर निर्बल हो जाएगा, आयु घट जाएगी और शीघ्र ही मृत्यु के समीप पहुँच जाओगे | मरना भी बड़ी बात नहीं है, भोगों के ऐसे संस्कार हृदय में पड़ जाते हैं जो कभी मिटते नहीं हैं | जितना मनुष्य भोग भोगता है, उतने ही गहरे उसके संस्कार पड़ जाते हैं फिर वे छूटते नहीं हैं, उनको छुड़ाना अत्यधिक असंभव हो जाता है |

श्रीमद्भागवत सप्ताह महायज्ञ

(श्रीभगवान् की शब्दमयीमूर्ति 'श्रीभागवतजी')

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवतजी' (२२/२/१९८५)

(संकलनकर्त्री / लेखिका – व्यासाचार्या साध्वी श्रीजी, मानमंदिर, बरसाना)

नारदजी सनकादिक मुनीश्वरों से बोले कि महाराज ! एक बात बताओ, हमने वेद, वेदांत, गीता आदि सब सुनाये और तब दुःख दूर नहीं भयो तो श्रीमद्भागवतजी के कहे-सुने से कैसे ज्ञान-वैराग्य को कष्ट दूर हो जावेगो, ये बात हमारी समझ में नहीं आ रही है | (नारदजी की समझ में सब बात आ तो रही है परन्तु हमलोगों के लिए वह पूछ रहे हैं कि हम लोग कैसे समझेंगे |) सनकादिक चारों भैयान् ने एक बड़ी सुन्दर बात बतायी कि कोई पेड़ है, जैसे - आम को पेड़ है तो आम तुम खाओ तो कैसो मीठो लगे लेकिन वा पेड़ की अगर लकड़ी खाओ तो मीठी नहीं लगेगी, पत्ता खाओ तो मीठो नहीं लगेगो तो यद्यपि वो फल आम के पेड़ से ही निकस के पैदा भयो है किन्तु फिर भी जो स्वाद, जो विलक्षणता फल में है, वो और वस्तुओं में नहीं है, या लिये वेद रूपी वृक्ष को श्रीमद्भागवतजी फल रूप हैं | तो वेद रूपी वृक्ष से निकलकर के भी फल के आस्वादन में वेद से ज्यादा विलक्षण याको प्रभाव है, याकी (श्रीमद्भागवत की) महिमा विलक्षण है | सनकादिक ने अन्य उदाहरण भी दियो है कि मिठाई खाओ तो यद्यपि यह बनती है गुड़ से, गन्ने के रस से तो जब शर्करा बन जाये, मिसरी बन जाये तो वाको मीठोपन बढ़तो चलो जाये अथवा जैसे घी है, यह सारे दूध में व्याप्त है लेकिन जब दही को मथकर नवनीत (माखन को लोंदा) अलग निकालो जाय तो वाको प्रभाव अलग होय, ऐसे ही जितने भी वेद हैं, शास्त्र हैं, पुराण हैं, जितना भी वाङ्गमय-जगत है, याको सार है - **श्रीमद्भागवत |** जब वेद-पुराण बनाने के बाद भी व्यासजी को मोह भयो तब भी देखो - श्रीमद्भागवत के द्वारा उनको लाभ भयो | या लिये नारद जी आप क्यों शंका करो ? नारद जी बोले कि आपके दर्शन से मैं धन्य हो गयौ और आप लोगों की शरण में हूँ | ऐसा कहकर नारदजी सनकादिक की वंदना करते हैं –

"यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः"

संत दर्शन से उसी समय सब अशुभ नष्ट हो जायें और आप जो प्रेम के प्रकाशक हैं, हम आपकी शरण में हैं |

अंत में एक बहुत अच्छी बात बताई नारद जी ने कि साधु संग सबको नहीं मिलै, कोई अच्छो महात्मा है, उसके पास दो आदमी बैठे सत्संग कर रहे हैं और बीसों आदमी वाके पास से निकल जावेंगें, ये भी नहीं ध्यान करेंगे कि कौन बैठो है, कहा कह रहो है, भगवच्चर्चा है, कि क्या है, क्यों ? इसका कारण यह है कि

"भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन
सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै"

जब बहुत जन्म के, लाखों करोड़ों जन्म के पुण्य इकट्ठे होय कर वे भाग्य बनकर के आवें तो वाको फल होय कि संत-संग मिले | बिना इतने सुन्दर भाग्य के, लाखों-करोड़ों जन्म के पुण्य के बिना सत्संग नहीं मिले | अनेकों जन्म के जब पुण्य उदय हों तब जाके भगवद्भक्त को संग मिले, साधु संग मिले और वा संग से तब जाकर के जीव को विवेक की प्राप्ति होय | अब तीसरे अध्याय में नारद जी ने विचार कियो कि साधन तो मिल गयो कि भागवतजी की कथा करनो है | अब ये विचार करनो है कि कथा कहाँ करें, सबसे पहली बात तो ये है और कितने दिन में करें, ये विचार अवश्य करना है | इस सम्बन्ध में नारदजी ने सनकादिक से प्रश्न कर दियो तो चारों भैया बोले कि कथा ऐसे स्थान पर करनी चाहिए जहाँ भूमि पुण्य होय, जहाँ ऋषि-महर्षि महात्मा लोग रह

संतों के प्रभाव से सब कृष्णमय हो जाता है। ऐसे संत के पास रहने से, बिना कुछ किये ही सहज भक्ति आ जाती है।

रहे हों, दूसरी बात सुंदर प्रकृति की छटा हो (वृक्ष-लताओं में जो आनंद है, वो तो चाहे एक लाख रुपये को तम्बू तनात टांग दियो जाय, वो आनंद नहीं आय सके है) इसीलिए सनकादिक कह रहे हैं - **"नानातरुलताकीर्णं नवकोमलवालुकम्"**

जहाँ स्वाभाविक रूप से लताएँ फ़ैल रही हों, बनो-बनायो चंदोबा होवे, ऐसे स्थान पर जहाँ पर जीवों में वैर न हो, ऐसो स्थान गंगातट पर हरिद्वार के निकट शुकताल एक स्थान है, वहाँ कथा भई | शुकदेव जी ने शुकताल पर भागवत सुनाई है और गंगातट हरिद्वार पर नारद जी ने यज्ञ कियो है | सूत जी कह रहे हैं कि साधारण प्राणी तो याको महत्व जान ही नहीं सके |

भागवत कथा सुनने के लिए ब्रह्माजी के पुत्र बड़े-बड़े ऋषि जैसे भृगु जी, वशिष्ठ जी, च्यवन जी, गौतम जी आदि दौड़े | यहाँ तक कि परशुराम जी, विश्वामित्र जी, मार्कंडेय जी, व्यासजी और पाराशर आदि बड़े-बड़े ऋषि भी आये | जितने वेद हैं वे आये, वेदांत आये, सत्रह पुराण आये श्रीमद्भागवत जी की कथा सुनने के लिए तथा गंगादि नदियाँ आयीं, जितने तीर्थ हैं, वे सब आये | सबको नारद जी ने आसन दियो और सब लोग बैठ गये, बैठते ही सबसे पहले भगवान् के लिए जयकार भयो, नमस्कार भयो भगवान् के लिए, शंख आदि मांगलिक शब्द बजाये गये |

सब शास्त्र में लिखो भयो है कि शंख, बेला और कांसे को शब्द मांगलिक होय, यासे अशुभ नष्ट होवें, ये सब मांगलिक ध्वनि हैं, इनसे भूत, प्रेत दूर होवें, इनसे सभी बाधायें दूर होती हैं | इसीलिए सनकादिक मुनियों द्वारा भागवत-कथा को आरंभ किये जाने पर शंख आदि शब्द किये गये | विमानन पर चढ़ करके समस्त देवता आये |

जब सब बैठ गये तो सनत्कुमार आदि चारों भाई बोले कि ये शुकशास्त्र भागवतजी हैं, याके सुनवेई से मुक्ति आ जाये और श्रीमद्भागवत सुनने से हृदय में भगवान् अपने आप आय जावें | भवसागर में जीव भटक्यो करे किन्तु जब भागवत जी को श्रवण करले तो मुक्त हो जाये और जा घर में श्रीमद्भागवत होए वो गृहस्थी को घर, घर मत समझियो **"तद्गृहं तीर्थरूपं हि"** वो घर तो तीर्थ बन गयो और देखो, शरीर में भी पाप तबही तक रहें जब तक कि मनुष्यन के द्वारा भागवत जी नहीं सुनी जाएँ | गंगाजी नहावे लोग जायें, कोई काशी जाये, कोई पुष्कर जाये, कोई प्रयाग जाये किन्तु ये सब मिलकर के श्रीमद्भागवतजी के श्रवण के अंश को भी नहीं पा सकें | भागवत जी, द्वादशाक्षर मंत्र, तुलसीजी, ये सब जितने भी साधन हैं, इनको एक समान जानो | जो मनुष्य भागवत शास्त्र को अर्थ समझकर के निरंतर वाको पाठ करै तो करोड़ों जन्म के पाप वह नष्ट कर दे, यामे कोई संदेह नहीं है, कहाँ तक कहें राजसूय यज्ञ है, अश्वमेध यज्ञ है, इन सबको पुण्य अपने आप श्रीमद्भागवत के द्वारा प्राप्त हो जाये और देखो जा व्यक्ति ने सारे जीवन भर अपनी शठता के कारण भागवत की कथा नहीं सुनी है, वो चांडाल है "चाण्डालवच्च खरवद्" गधा है और वा व्यक्ति को ऐसो समझो "जननीजनि दुःखभाजा" अपनी मैया के गर्भ में बोझ बनकर के रहो, वाकी मैया ने जो वाको नौ महीने तक अपनी कोख में धारण करौ, बेकार धारण कियो, वह स्वतः भी जा रहा है अधोगति को और अपने पितरों को भी ले जा रहा है | धिक्कार है उस पशु जैसे वा आदमी को, जो पृथ्वी को भार है, पृथ्वी को वजन बढ़ा रहो है, श्रीमद्भागवत से विमुख होकर के भगवद्भक्ति से विमुख है | वो अपनी मां के पेट को भार है और पृथ्वी को भार है | या लिये पहली बात तो ये है कि याको श्रवण सर्वदा होनो चाहिए | वीरन को कहा नियम, अरे अच्छी वस्तु सदा पाये चले जाओ लेकिन सनकादिक चारों भैया कह रहे हैं कि एक बात जरूर है कि जब याको श्रवण करे तो सत्य और ब्रह्मचर्य के साथ श्रवण करे, ये अवश्य है | हम भागवत श्रवण कर रहे हैं और सत्य की रक्षा नहीं कर रहे हैं, ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं कर रहे हैं तो ये ठीक नहीं है | अब कलियुग में हर एक प्राणी को या खांड़े की धार पर चलनो, मन को रोकनो कठिन है, यालिये थोड़े दिन में याको नियम बना दियो गयो कि भाई तुम अधिक नहीं रह सको तो सात दिना तक तो कम से कम अपने काम-वेग को रोकई सको |

एक तो ये कारण बतायो और दूसरो कारण ये बतायो है कि सबकी आयु थोड़ी है, लम्बे दिन तक कोई साधन नहीं कर सके, या लिये भी सरलता की दृष्टि से और समय की दृष्टि से सात दिनन को नियम बतायो है और सात दिन के सप्ताह यज्ञ कौ रूप बतावे के बाद वे (सनकादिक मुनि) बताते हैं कि यह सप्ताह यज्ञ तो योग से बढ़कर के है, ध्यान, ज्ञान आदि सबन से सप्ताह कथा को अधिक फल है और गर्जना करके कह रहे हैं या बात को कि कोई वस्तु संसार में असंभव नहीं है यदि मनुष्य श्रद्धा के साथ सप्ताह कथा को ठीक से, नियम से श्रवण करे | शौनक जी ने या बात सुनकर के फिर उन्होंने और महिमा पूछी तो सूतजी आगे बता रहे हैं कि जा समय कन्हैयाजी अपने धाम को जा रहे तो वा समय उद्धव जी उनके पास गए और श्यामसुंदर से बोले कि हे प्रभु ! आप तो जा रहे हो और ये घोर कलिकाल आ गयो है, सब मनुष्य खल (दुष्ट) है जायेंगे और या कलियुग के प्रभाव से साधु-संत भी उग्र स्वभाव के हो जायेंगे, यहाँ तक कि सारी पृथ्वी भार रूप हो जावेगी | हे कमललोचन ! तुम्हारे अतिरिक्त याको कोई त्राता (रक्षक) नहीं है | हे प्यारे ! तुमने भक्तन के लिए ही तो अवतार लियो, सगुण-साकार बने, लीला करी और आप अब जा रहे हैं तो मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये | जब ऐसी प्रार्थना की उद्धव जी ने,

"उद्धव वचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः"

उद्धवजी की वाणी को सुनकर के प्रभास क्षेत्र में श्यामसुंदर ने विचार कियो कि बात तो उद्धव जी ठीक कह रहे हैं, उद्धव जी बड़े भक्त हैं, गोपीजनों के कृपापात्र हैं, वे सदा जगत् के कल्याण की बात सोचें | उनकी बात सुनकर के श्यामसुंदर विचार कर रहे हैं कि प्यारे भक्तन के अवलम्बन के लिए, भक्तन के सहारे के लिए कहा ऐसी वस्तु दूँ कि मेरे बाद भी इनको सहारा, अवलंब है जाय | ये विचार करके श्रीकृष्ण ने अपनो वैष्णव तेज **श्रीमद्भागवत** में रख दियो और वाई में अंतर्धान होवे के बाद श्यामसुन्दर भागवत रूपी समुद्र में प्रवेश कर गये | जब भागवत में प्रवेश कर गये तो सब वैष्णव तेज जितनो होय सब यामें आ गयो |

"तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्"

भागवत समुद्र है यामें भगवान् प्रवेश कर गये

"तेनेयं वाङ्मयीमूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः |"

या लिये ये भागवतजी भगवान् की मूर्ति कही जावें, श्यामसुंदर की यह शब्दमयी प्रतिमा है, प्रतिमा इसलिए है कि यामें बारह स्कन्ध हैं तो जो पहलो स्कंध है वो चरण से लेकर जन्हू तक है, नीचे से लेकर घोटूं तक पहलो स्कन्ध है, दूसरो स्कन्ध कटि तक है, तीसरो स्कन्ध श्यामसुन्दर की नाभि तक है, चौथो स्कन्ध है भगवान् को उदर, पाँचवों स्कन्ध है भगवान् को हृदय, छठवों स्कन्ध है श्यामसुंदर को कंठ और सातवों स्कन्ध श्यामसुन्दर को मुख है, आठवों स्कन्ध है –भगवान् के नेत्र और नवों और दसवों स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र है, सर्वोच्च यामें कृष्णलीला भयी है; 'मन' एकादश स्कन्ध है और 'आत्मा' द्वादश स्कन्ध है | अन्तःकरण के बीच में जो पंचप्राण हैं, वो रासपंचाध्यायी है, जैसे – हमारे-तुम्हारे शरीर में प्राण होंय वैसे ही जो रासलीला है, ये भगवान् के प्राण-स्थान बताई गई है | ये प्राण है रासलीला, या लिये यहाँ पर लिखें कि **"तेनेयं वाङ्मयीमूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः |"** भगवान् की यह वाङ्मयीमूर्ति है, साक्षात् प्रतिमा है | जैसे हम पूजा करबे जावें मूर्ति की और वाके कर, चरण, मुख, उदर, नासिका होंय, वैसे ही ये श्यामसुन्दर की साक्षात् मूर्ति है | याके श्रवण से, पाठ से, दर्शन से पाप नष्ट होंय, दर्शनमात्र से पाप नष्ट होंय, ये बात बिल्कुल सत्य है और जो सप्ताह श्रवण करें नियम से, वाकी महिमा कहा कही जाय, वो सबसे अधिक कृपापात्र है श्रीठाकुरजी का | कितनो सरल है, अनन्त पापन को थोड़ी देर में खत्म कर लेवे सात दिन में, कितनी बड़ी कृपा की बात है कि जो पाप की राशि लाखों-करोंड़ों जन्म तक हमलोग भोगते वो केवल सात दिन में नष्ट होय जाय, इसलिए श्रीमद्भागवत-कथा का श्रवण बहुत ही सरल व सरस साधन-साध्य है | क्रमशः

जिनके पास बैठते ही भगवान् का यश सुनने को मिले, समझ लीजिये वे संत हैं।

श्रीमद्भागवत-रसामृत

(शान्ति का स्रोत 'सत्संग')

व्यासाचार्या साध्वी मुरलिकाजी (मानमन्दिरवासिनी,गह्वरवन, बरसाना)
द्वारा कथित 'श्रीमद्भागवत-कथा' (९/१/२०१४)

श्रीभागवतजी की कथा सुनने के लिए नारदजी सात दिन तक एक आसन से बैठे रहे लेकिन शाप ने कोई व्यवधान नहीं किया, एकाग्रतापूर्वक आराम से बैठकर के कथा सुनी नारद जी महाराज ने | शौनकादि ऋषियों ने पूछा कि कथा-श्रवण का संयोग कैसे बना ? तो सूतजी महाराज बोले कि एक दिन नारदजी को सनकादिक मुनीश्वरों के दर्शन हुए, नारद जी बड़े चिंतातुर (परेशान) दिखाई पड़े, इनकी उदासी को देखकर के सनकादिक मुनीश्वर चिन्तित हो गये | इनका मिलन कहाँ हुआ है ?

एकदा हि विशालायां चत्वार ऋषयोऽमलाः |
सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ||

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य १/२५)

ब्रज के आदिबद्री धाम में इनका मिलन हुआ है | एक दिन आदिबद्री धाम में चारों मुनीश्वर (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) कथा (सत्संग) के लिए आये |

अरे ! सनकादिक तो ब्रह्मलोक में रहने वाले मुनीन्द्र हैं, क्या ब्रह्मलोक में इनको सत्संग नहीं मिलता जो यहाँ मृत्युलोक में आकर सत्संग करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि ब्रह्मलोक में और तो सब कुछ है लेकिन सत्संग का अभाव है, वहाँ सत्संग नहीं है |

तात मिले पुनि मात मिले सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई, राज मिलें गज बाज मिलें सब साज मिले मन वांछित पाई | इहि लोक मिले सुर लोक मिले विधि लोक मिले वैकुंठहु जाई ||

सब कुछ मिल जायेगा लेकिन-

दुर्लभ संत समागम भाई || सत्संग के लिए ब्रह्मलोक में रहने वाले मुनियों को भी मृत्युलोक में आना पड़ता है | वहाँ सत्संग नहीं है, क्योंकि –

राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय |
जो सुख यहाँ सत्संग में, सो वैकुंठ न होय ||

ये तो भगवत्कृपा से इस मृत्युलोक में, इस धरा पर ही सत्संग मिल सकता है, वैकुंठ में भी इसकी प्राप्ति नहीं है | ब्रह्मलोक तक के मुनिगण इस मृत्युलोक में आते हैं कि सत्संग मिल जाये, संत-समागम मिल जाये | सत्संग के लिए सनकादिक मुनीश्वर बद्रीधाम आये तो वहाँ एकाएक नारद जी का दर्शन हो गया और जैसे ही उन्होंने नारदजी महाराज को देखा तो सनकादिक मुनीश्वरों ने पूछा नारद जी से – "देवर्षे ! आपको किस बात की चिन्ता है, ये कैसी उदासी है आपके मुख पर ?" नारद जी महाराज सोचने लगे कि अब सनकादिक मुनीश्वरों को क्या बताएं ? क्योंकि मुनीश्वर कह रहे हैं कि देवर्षे ! आप जैसे असंग महापुरुष के लिए चिन्ता अथवा औदास्य की भावना उचित नहीं है, अरे किसी गृहस्थी को चिन्ता हो तो ठीक भी है क्योंकि नाना प्रकार की गृहस्थ में समस्याएं होती हैं, कहीं बेटा की, कहीं वधू की, कहीं अपनी आजीविका की, इस तरह अनेकों प्रकार की चिंताएं होती हैं परन्तु नारदजी महाराज ! आप जैसे निःसंग महापुरुष को आज कौन-सी भारी चिन्ता हो गई है कि आप बड़े चिन्तित दिखाई दे रहे हैं, ये चिन्ता आपको शोभा नहीं देती | नारद जी महाराज विचार कर रहे हैं कि जब सनकादिक मुनीश्वरों को ये पता चल जाएगा कि मुझे चिन्ता किस बात की है तो ये ही कहेंगे कि आपकी चिंता शोभनीय है, इस प्रकार की चिन्ता तो हर भक्त को होनी ही चाहिए |

नारदजी महाराज को किस बात की चिन्ता है, नारद जी गृहस्थ तो हैं नहीं, इनका कोई घर भी नहीं है, जो नारद जी उनकी चिन्ता करेंगे | तो फिर किस बात की चिन्ता

संत की तो वायु का स्पर्श भी यदि किसी जड़-चेतन को हो जाय तो वे भी भगवद्रति पा जाते हैं।

नारद जी को है ? नारद जी को तो केवल जीव-कल्याण की चिन्ता है, नारद जी को केवल भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की चिन्ता है और नारदजी को किसी भी बात की चिन्ता नहीं है | भक्त का कर्तव्य है – 'भक्ति की स्थापना करना |' भक्तजन ही तो भक्ति की स्थापना करेंगे, वे नहीं करेंगे तो फिर भक्ति की स्थापना और कौन करेगा ? किसी भी क्रिया के अलग-अलग देश, काल और परिस्थिति में उसके अलग-अलग गुण, धर्म हो जाते हैं; चिन्ता बुरी अवश्य है लेकिन वही चिन्ता अगर भगवान् के लिए हो जाये तो वही 'चिन्ता' चिन्तन बन जाती है | क्रोध बुरा अवश्य है लेकिन यदि श्रीहनुमानजी महाराज लंका में निशाचरों के प्रति क्रोध न करते, मेघनाद के प्रति कोध न करते, अक्षय कुमार के प्रति क्रोध न करते तो क्या रामजी की लीला सिद्ध हो सकती थी? लोभ बुरा अवश्य है लेकिन यदि यही लोभ भगवत्कथा में हो जाये, भगवन्नाम में हो जाए कि कैसे नामामृत ज्यादा से ज्यादा पीने को मिले, कैसे लीला-कथा का रसास्वादन हम लोग अधिक से अधिक रूप में कर सकें, तो फिर ये लोभ ही परम शोभनीय हो जायेगा | नारदजी को चिन्ता है लेकिन वह चिन्ता खाने-पीने की, रहने-सहने की, दुकान आदि की चिंता नहीं है | नारदजी को केवल चिन्ता है भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की | सनत्कुमारों ने पूछा – "हे देवर्षे ! कैसे चिन्तित हो ?" नारदजी बोले – "अरे मुनीश्वरों ! मन की शान्ति ढूँढ़ रहा हूँ, जब से चला हूँ तब से मेरा मन असंतुष्ट है |"

सनकादिक – "क्यों असंतुष्ट है?"

नारद – "सब तीर्थों में घूम लिया, पृथ्वी लोक में आया, यहाँ के सर्वश्रेष्ठ तीर्थों का अटन मैंने किया किन्तु फिर भी मेरे मन को शान्ति नहीं मिली |"

सनकादिक – "शान्ति क्यों नहीं मिली?" तो नारदजी बोले –**सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते |**
उदरम्भरिणो जीवा वराकाः कूटभाषिणः ||

(भागवतमाहात्म्य १/३१)

मुनीश्वरो ! पृथ्वी लोक में सत्य नहीं रहा |

नहिं असत्य सम पातक पुंजा |
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ||

(रामचरितमानस, अयो.- २८)

असत्य सबसे बड़ा पाप है | पृथ्वी में सत्य नहीं रहा, जहाँ जाओ, सब जगह असत्य ही है, तपस्या नहीं रही, लोग भागवत धर्म के लिए थोड़ा कष्ट नहीं सह सकते हैं | न शारीरिक तप रहा, न मन-वाणी का तप रहा, कहीं शौचाचार (पवित्र आचरण) देखने को नहीं मिलता है क्योंकि जीव इतना विषय भोगों में डूब गया है कि पवित्रता को छोड़ बैठा है, न संयम देखने को मिलता है, न शुद्ध आचरण देखने को मिलता है | कहीं दया नहीं रही और दान भी कहीं नहीं है | मन में प्रश्न होगा कि आजकल तो बहुत दान हो रहा है तो क्या फिर भागवत जी ने झूठ कह दिया ? नहीं, भागवतजी की तो अमोघ वाणी है, भागवत जी ने झूठ नहीं कहा है, वास्तव में दान हो ही नहीं रहा है | लोग दान देते तो हैं, सुनने को भी मिलता है, टी.वी खोलकर बैठो तो दिखाई देता है कि अमुक व्यक्ति ने उतना गौदान किया, उन्होंने इतना गौदान किया, इन्होंने चिकित्सालय के लिए दान किया, उसने विद्यालय के लिए दान किया, इस तरह अनेक प्रकार के दान हो रहे हैं, लोग खूब दान कर रहे हैं और भागवत जी कह रही हैं कि कलियुग में दान है ही नहीं | वस्तुतः दान की एक मर्यादा है, संसार में दान बहुत हो रहा है लेकिन शास्त्रीय मर्यादा में बँधकर जो दान होता है, वह दान आज संसार में नहीं हो रहा है और उस मर्यादा का उल्लंघन करके जो साधन किया जा रहा है, उससे सब साधन तामस होता जा रहा है |

तामस धर्म करहिं नर, जप तप व्रत मख दान |

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -१०१) क्रमशः

जिसे एक गिलास पानी की भी आवश्यकता न हो और न ही किसी से बात करने या बोलने की अपेक्षा हो, वह भक्त शान्त और निर्भय हो जाता है। जैसे वर्षा पड़ने पर घास स्वतः उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह आसक्तियों व कामनाओं को छोड़ने पर चारों ओर फिर प्रभु ही दिखाई देंगे। बिना आसक्ति छोड़े भगवद्भजन नहीं होता।

धाम-महिमा

(लीला-भूमि की विशेषता)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (५/१/२००४) से संग्रहीत
संकलन/लेखन- डॉ. रामजीलाल शास्त्री 'बी. एस. सी., एम. ए. द्वय् (हिन्दी, संस्कृत), बी.एड. आचार्य (साहित्य), पी. एच. डी., अध्यक्ष मान मन्दिर सेवा संस्थान, बरसाना

श्रीभगवान् की लीला-भूमियों में कोई भी जीव यदि देह-त्याग करता है तो उसका भव-बंधन अवश्य छूट जाता है

चार खानि जग जीव अपारा | अवध तजें तनु नहिं संसारा ||

(रामचरितमानस, बालकाण्ड – ३५)

जो उपासक है, वह अवध और ब्रजभूमि की महिमा को मान लेता है क्योंकि यह मार्ग ही श्रद्धा और विश्वास का है | रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था - **We walk by faith, not by eyes.** हम विश्वास के द्वारा चलते हैं, आँखों के द्वारा नहीं | कई जगह यह बात कही गई है –

"जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा |
मम समीप नर पावहिं बासा ||"

इस धाम में जो निष्ठा से रहते हैं, वे भगवान् के प्यारे बन जाते हैं |

"अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी |
मम धामदा पुरी सुखरासी ||"

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ४)

सभी शास्त्रों में स्थान-स्थान पर यही बात कही गयी है कि धाम के निवास मात्र से भगवान् प्रसन्न होते हैं | मथुरा-माहात्म्य में कहा गया है कि मथुरा के निवास मात्र से यहाँ रहने वाले पार्षद रूप हो जाते हैं, चतुर्भुज हो जाते हैं | इन्हीं कारणों से नित्य धाम का अवतार यहीं होता है | यह एक व्यवस्था है – जैसे स्टेशन पर जाकर आप रेलगाड़ी में बैठोगे तो गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे और यदि आप कहीं दूसरी जगह रास्ते में रेलवे की पटरी पर खड़े होगे तो नहीं पहुँच पाओगे | अब जैसे - कोई कहे कि हम राम ही राम क्यों जपें, हम तो 'गधा-गधा' जपेंगे, तब इसका क्या उत्तर दिया जायेगा ? ऐसे लोगों से कह देना चाहिए कि तुम खूब 'गधा-गधा' जपो, हमारा क्या नुक्सान है | हम तो 'राम-राम' जपेंगे, हम तो 'गधा-गधा' नहीं जपेंगे | ऐसे फिजूल के तर्कों का कोई समाधान नहीं है | भगवान् की कृपाशक्ति से धाम की अचिन्त्य महिमा है | पद्मपुराण के भागवत माहात्म्य में नारद जी ने कहा –

धन्यं वृन्दावनं तेनभक्तिर्नृत्यति यत्र च |

(भागवतमाहात्म्य १/६१)

'भक्ति' वृन्दावन में नृत्य करती रहती है, यहाँ के निवास से सहज में भक्ति प्राप्त हो जाती है | अब कोई कहे कि भक्ति यहाँ कहाँ नृत्य कर रही है, दिखाई तो नहीं पड़ रही है, कोई घुंघरू की ध्वनि तो सुनाई नहीं पड़ रही है | भक्ति के यहाँ नृत्य करने का मतलब यह नहीं है कि वृन्दावन सिनेमाघर बन गया है | इसका यह अभिप्राय है कि ब्रज-वृन्दावन धाम में भक्ति की सहज उपलब्धि है | इन चीजों को तर्क से नहीं समझा जा सकता | अस्तु, जब तपस्या करने के बाद ब्रह्माजी को भगवान् ने सबसे पहले अपना लोक अर्थात् धाम दिखाया | धाम के दर्शन के बाद तब अपना दर्शन कराया, रूप का दर्शन कराया | 'धाम' का अर्थ है - मकान या जगह और 'धामी' का अर्थ है -घर वाला | नामी का अर्थ होता है - नाम वाला |

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः संदर्शयामास परं न यत्परम् |
व्यपेतसंक्लेश विमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ||

(भागवत २/९/९)

आसक्ति बहुत खराब चीज है परन्तु आसक्ति से अच्छी वस्तु भी कोई नहीं। यदि आसक्ति महापुरुषों में हो जाय तो निश्चित कल्याण हो जाता है। अगर आसक्ति संसार से नहीं छूटती है तो इसको महापुरुषों से बाँध दो, तुम्हारा अवश्य कल्याण हो जायेगा।

वास्तव में यदि कोई महापुरुष मिल जाय तो उनकी सन्निधि में चाहे कोई भी साधन किया जाय, वही श्रेष्ठ है।

सबसे पहले भगवान् ने ब्रह्माजी को अपना धाम दिखाया, जिस धाम से आगे कोई और वस्तु नहीं है, धाम से आगे कोई और लोक नहीं है | जिस धाम में संक्लेश नहीं है, मोह नहीं है, किसी प्रकार का भय अथवा घबराहट नहीं है | जहाँ दिव्य पार्षद हैं, 'विबुध' अर्थात् देव, स्वर्ग के देवता नहीं | भगवान् के पार्षद जिन्होंने भगवान् को देखा है, वे वहां भगवान् की स्तुति करते रहते हैं, भगवद्गुण गाते हैं | उस धाम में कोई अन्य वार्ता (कुकथा) नहीं है, जैसे यहाँ होती है कि आज क्या हुआ, आज ये हो गया, वो हो गया, दुनिया भर की बातें वहाँ नहीं होती हैं | यहाँ पृथ्वी पर धाम का अवतार होने से उसका पृथ्वी से सम्बन्ध है, दिखाई पड़ रहा है कि यहाँ धाम पृथ्वी पर है अतः यहाँ अन्य बातें भी हो जाती हैं लेकिन नित्य धाम में ऐसी बातें नहीं होती हैं क्योंकि वहाँ आसपास माया का कोई क्षेत्र नहीं है | वहाँ केवल भगवान् की स्तुति, भगवान् का गुणानुवाद ही गाया जाता है और कोई दूसरा व्यापार वहाँ नहीं है | प्रश्न : क्या यह धाम (पृथ्वी पर स्थित) माया से ग्रसित है ? उत्तर : 'धाम' माया-राज्य में अवतरित है, ग्रसित नहीं है | जैसे कमल पानी में रहते हुए भी उससे अलग रहता है | ब्रज-वृन्दावन के बारे में जैसा कि रसिकों ने कहा है –

फणि पर रवि तर, नहिं विराट महँ, नहि संध्या नहिं प्रात |

दिखाई पड़ता है कि यहाँ शाम हुई, सवेरा हुआ लेकिन वस्तुतः यहाँ काल का, सुबह-शाम का बंधन नहीं है | यह धाम भगवान् के विराट स्वरुप में स्थित नहीं है, फिर और क्या कहा जाय ? यह धाम शेषनाग के फन पर नहीं है जबकि ऐसा दिखाई पड़ता है | रसिकों ने लिखा है –

प्रगट जगत में जगमगै वृंदा विपिन अनूप |
नयन अछत दीखै नहीं यह माया को रूप || (श्रीध्रुवदासजी)

बहुत सी चीजें ऐसी हैं, जो दिखाई नहीं पड़ती, क्या छोटा-सा स्थूल पिण्ड (शरीर) दिखाई पड़ता है, यह भी पूरा दिखाई नहीं पड़ता | इसके भीतर रोगों की जाँच करने के लिए एक्सरे, अल्ट्रा साउंड आदि द्वारा परीक्षण करने पड़ते हैं क्योंकि शरीर के भीतर सूक्ष्म तत्वों तक मनुष्य की दृष्टि नहीं पहुँच सकती | मनुष्य तो अँधा है | हजारों सूक्ष्म चीजें हैं | क्या आप अपना मन देख सकते हैं ? बुद्धि देख सकते हैं ? अहंकार देख सकते हैं ? इन्द्रिय देख सकते हैं ? संस्कार देख सकते हैं ? कर्म देख सकते हैं ? हजारों ऐसी चीजें हैं जो हम नहीं देख सकते | भागवत में वर्णन आया है कि हमारे शरीर में चित्त है, यह कैसे पता पड़ेगा तो कहा गया कि इन्द्रियों की चेष्टा से चित्त का अनुमान लगाया जा सकता है –

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः |
एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ||

(भागवत ४/२९/६३)

जैसे कोई गाड़ी जा रही है तो आप कहेंगे कि इसे चलाने वाला कोई चालक होगा तभी तो चल रही है, बिना चालक के गाड़ी कैसे चलेगी ? यदि रिमोट कन्ट्रोलर से भी चलाओगे तब भी कोई चलाने वाला तो होगा ही, जैसे बहुत-सी चीजें रिमोट कंट्रोलर से चलती हैं, दूर से बटन दबा दिया जाता है और वस्तु चलने लगती है किन्तु इन्हें चलाने वाला कोई मनुष्य होता है | अन्तरिक्ष में रॉकेट छोड़ा जाता है तो नीचे रिमोट कंट्रोलर के द्वारा इस पर नियंत्रण रखा जाता है, उसे चलाया जाता है | बिना चलाने वाले के कोई चीज नहीं चलती है | इसी प्रकार भागवत के उपरोक्त श्लोक में कहा गया कि जीव की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ कर्म करती हैं तो इनका कोई चालक (ड्राइवर) अवश्य होगा, वह कौन है, वह चित्त है | यह सिद्धान्त थोड़ा कठिन विषय है लेकिन बहुत बढ़िया ढंग से इसमें समझाया गया है | हम लोग पूर्व जन्म में भी

भागीरथी गंगा तो केवल शारीरिक पाप नष्ट कर सकती है किन्तु **सेवा-गंगा** शारीरिक-पापों के अलावा मानसी-पापों का भी शमन कर देती है। अन्य साधन तो अहम् को जाग्रत कर देते हैं और सेवा से अहम् नष्ट हो जाता है। बिना सेवा किये न अहम् नष्ट होगा और न हृदय शुद्ध होगा।

उद्धार कर्म नहीं करेगा, उद्धार तो प्रभु का आश्रय ही करेगा।

की होती हैं | देखने में आता है कि एक लड़का जन्म से ही क्रोधी है, हर समय क्रोध करता, लड़ता-फनफनाता है, इसका कारण यह है कि वह पूर्व जन्म की किसी तामसी योनि से आया है | जैसे - सांप, बिच्छू, कांतर, गुहेरा (विषखोपड़ा) आदि परम क्रोधी तामसी योनियाँ हैं | कोई लड़का स्वभाव से ही शांत होता है, इसलिए जैसे चित्त की वृत्तियाँ अलग-अलग होती हैं, उनसे पता पड़ता है कि पिछले कर्मों के अनुसार चित्त काम कर रहा है | चित्त काम कर रहा है, इसका प्रमाण क्या है तो इसका उत्तर यह है कि ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ चल रही हैं, तो इनको कोई चला रहा है, अब वह चलाने वाला दिखाई नहीं पड़ता, यह दूसरी बात है | अब तुम कहो कि अरे ! बुद्धि दिखाई नहीं पड़ती इसलिए हम बुद्धि को नहीं मानते तो तुम मत मानो, तुम्हारे न मानने से क्या होता है ? तुम जो कहते हो कि हम नहीं मानेंगे तो तुम्हारी खोपड़ी ही इसका प्रमाण है, तुम्हारी स्वयं की बुद्धि ऐसी है कि हम नहीं मानेंगे, यही बुद्धि के अस्तित्व का प्रमाण है | बहुत-सी चीजें दिखाई नहीं पड़ती हैं | अनंत कर्म हैं | केवल छोटा-सा यह स्थूल शरीर हमें दिखाई पड़ता है और वह भी पूरा नहीं दिखाई पड़ता है | अब हमारे शरीर के पीछे क्या हो रहा है, इसका हमें पता नहीं पड़ता | इसलिए मनुष्य तो इतना अंधा है | इसी तरह पृथ्वी पर स्थापित धाम और नित्य धाम एक ही है लेकिन दिखाई नहीं पड़ता है, क्योंकि हमारी आँखों में माया का पर्दा पड़ा हुआ है, हमारा अन्तःकरण मायिक विकारों के कारण गन्दा हो गया है | (जब सिद्धांत बहुत हो जाता है तब थोड़ी रस की बात भी जरूरी पड़ती है क्योंकि ज्यादा सिद्धांत की चर्चा से लोग ऊब जाते हैं, इसलिए सिद्धांत के साथ मन न ऊबे क्योंकि रस ही मुख्य वस्तु है) नित्य धाम और पृथ्वी पर दिखाई पड़ने वाला ब्रज अथवा अवध धाम एक ही है किन्तु इसे हम समझ नहीं सकते, इसलिए नहीं समझ सकते क्योंकि हमारी बुद्धि देश, काल से परिच्छिन्न है | परिच्छिन्न माने दो चीज हैं बाँटने वाली, एक तो देश जैसे यदि आप घर में बैठे हैं तो बरसाना में नहीं हैं, यह देश की परिच्छिन्नता है | काल की परिच्छिन्नता यह है कि आप सन् २०१८ में बैठे हैं तो इसका अभिप्राय है कि आप सन् १८५७ में नहीं थे अर्थात् यह वर्तमान आपका शरीर उस वर्ष में नहीं था | यह काल की परिच्छिन्नता है, उसे तो केवल इतिहास में पढ़ते रहो | इसलिए देश और काल की परिच्छिन्नता के कारण हमारी बुद्धि उस वस्तु को नहीं समझ सकती जो देश और काल से अपरिच्छिन्न है | भगवान् के आँख, कान, हाथ-पैर आदि सर्वत्र हैं, इस बात को हम कैसे समझ सकते हैं ? इसीलिए पृथ्वी पर स्थापित यह ब्रज और अवध धाम वही है जो नित्य धाम है, यह हमारी बुद्धि में समझ में नहीं आता है क्योंकि हमारी बुद्धि देश और काल से परिच्छिन्न है लेकिन रसिक संत-महापुरुष कहते हैं कि इस धाम में इस तरह रहो, यह वही धाम है, यहाँ पर श्रीराधारानी की लीलाकाल की वही दिव्य कुंजें हैं | **"यही है यही है भूलि भरमो न कोउ ||"** ये है रसिकों की वाणी अर्थात् इतनी देर से जो समझाने का प्रयास किया गया, उससे अच्छा है कि सीधे-सीधे यह मान लो कि यह वही चिन्मय धाम है तो इतने परिश्रम की जरूरत नहीं पड़ेगी | यह वही वस्तु है | श्री भट्टदेवाचार्य जी की वाणी है, वह कहते हैं कि भ्रम मत करो | यहाँ वही श्रीराधारानी की दिव्य कुंजें हैं, आज भी वह यहाँ खेल रही हैं, ऐसा विश्वास करके यहाँ रहो |

कामना के रहते तो जीव को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता। प्रह्लाद जी ने कहा – " एवं जनं निपतितं.....तव भृत्यसेवाम् ॥ " (भा. ७/९/२८) ये संसार सर्पों का कूप है, जिसमें जीव घुसता जा रहा है। जैसे-जैसे कामना को भोगता जाता है वैसे-वैसे और कामनाएँ आती जाती हैं और यह कामना रूपी सर्प एक दिन जीव को सम्पूर्ण रूप से खा जाता है। कामना के रहते तो जीव को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता। 'काम' जीव को अति दीन बना देता है। प्रह्लाद जी ने भगवान् से यही वरदान माँगा था कि मेरे हृदय में कभी भी कामना उत्पन्न न हो क्योंकि कामना आते ही बारह प्रकार की शक्तियाँ इन्द्रिय, मन, धृति, आदि सब नष्ट हो जाती हैं। " यदि रासीश मे.....भवतस्तु वृणे वरम् ॥ " (भागवत ७/१०/७)

श्रीराधासुधानिधि

(विशुद्ध भक्ति की तरंग 'निर्भयता')

(श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (२,३/ ५/१९९८ से संग्रहीत)

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी पद्माक्षीजी, मानमंदिर, बरसाना

भक्त का पहला लक्षण होता है - अभय, वह डरता नही है | मनुष्य को भय क्यों लगा करता है, भय लगता है पाप के कारण से | किसी भी प्रकार का भय हो, समाज का भय हो अथवा निंदा का भय हो, पाप के कारण ही मनुष्य को भय लगता है, ये निश्चित बात है और जब तक चित्त में पाप है तो भय लगेगा और यदि चित्त में पाप नहीं है तो भय नहीं लगेगा | इसलिए पाप के कारण ही मनुष्य भयभीत रहता है काल से और जो कृतकृत्य (परम संतुष्ट) हैं, ऐसे रसिकजन तो मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं अतिथि की तरह – "कब मरिहौं कब देखिहौं, नैनन नित्यविहार ||" वह दिन कब आयेगा, जब हम अपनी आँखों से नित्य-विहार देखेंगे | इस शरीर को भगवद्भक्त एक बाधा समझता है किन्तु हम जैसे देहासक्त-देहाम्भर लोग शरीर-संसार को ही सब कुछ समझे बैठे हैं, ये सबसे बड़ा पाप है, इस शरीर (चोला) की आसक्ति छूटने के बाद ही श्रीजी का रस मिलेगा | हम साधु बन जायें, चाहे कुछ बन जायें, जड़ शरीर की आसक्ति के रहते श्रीराधिकारानी का प्रेमरस नहीं मिलेगा | 'श्रीराधासुधानिधि' में यह बात कही गई है –

वृन्दारण्ये नव रस - कला - कोमल प्रेम – मूर्तेः
श्रीराधायाश्चरण - कमलामोद - माधुर्य – सीमा ।
राधां ध्यायन् रसिक - तिलकेनात्त केली – विलासां
तामेवाहं कथमिह तनुं न्यस्य दासी भवेयम् ॥

(श्रीराधासुधानिधि - २६१)

लोग सोचते हैं कि हम वृन्दावनवास करेंगे परंतु वृन्दावनवास में तुमने ये ध्यान नहीं दिया कि तुम्हारी आसक्ति शरीर में है कि वृन्दावन में है, ये भी तो सोचना चाहिये | हम कहते हैं कि हम श्रीराधारानी के भक्त हैं, हम रसिक हैं परंतु आसक्ति लाड़लीजी में न हो करके यदि पैसे में, शरीर में और भोग में है तो हम कैसे भक्त हो जायेंगे | ब्रजवास करो, कैसे ? इस बीस कोस वृन्दावन में जा करके नन्दगाँव, बरसाना, गोवर्धन आदि लीला स्थलियों में रहो | वहाँ पर दिन-रात केवल राधारानी के अतिरिक्त और कुछ मत सोचना | केवल शरीर की सुविधा, शरीर के मान-सम्मान का ध्यान रखने वाले श्रीजी के रसिक कैसे हो सकते हैं ? ब्रजवास करते समय राधारानी के सुंदर चरणकमल का जो आमोद, रस, आनन्द तथा मधुरता है उसकी सीमा बन के रहना, सीमा कहते है हद्द को – 'हद्द' का अर्थ है कि जहाँ से आगे नहीं बढ़ते हैं, जैसे - लक्ष्मणजी ने सीताजी की सुरक्षा हेतु रेखा खींची परन्तु वह उस सीमा को छोड़ के आगे बढ़ गयीं तो उनका हरण हो गया, उस रेखा के बाहर अगर वह न जातीं तो हरण न होता | जब मनुष्य अपनी सीमा को तोड़ता है तो वह आपत्ति में फँसता है | यह ब्रजभूमि निश्चित ही तुमको राधारानी से मिला देगी, तुम्हें उनका दर्शन करा देगी | इस भूमि में निष्ठा से निवास करो तो यह निश्चित रूप से तुम्हें रास देगी, विलास आदि सब कुछ देगी परन्तु कब

हमारा ये मन उछल कूद बंद नहीं करता है। ये मन ही हमें मारता है। ये मन ही हमारा मित्र है और ये मन ही हमारा शत्रु है। दुनियाँ में कोई और बैरी नहीं है। बैरी है अपना मन; जो भगवान् की ओर नहीं चलता है।

संग उसका करो जो सदा संग रहे, सदा साथ निभावे। प्यार उससे करो जिसका प्यार कभी मरे नहीं।

देगी ? तो राधासुधानिधिकार कहते हैं कि जब ब्रजवास करते समय तुम सीमा अर्थात अपनी हद्द के भीतर रहोगे, ऐसा नहीं कि ब्रज में चले आये तो चाहे जैसा संग्रह करने लग गये, चाहे जैसा ऊट-पटांग (व्यर्थ) काम करने लग गये, स्वादिष्ट भोजन (लड्डू-पूड़ी-कचौड़ी आदि) की आसक्ति करने लगे, विषय-भोगों की आसक्ति में ही सारा जीवन बीत गया तो कुछ नहीं मिलेगा। "श्रीराधायाश्चरण - कमलामोद - माधुर्य – सीमा" सबसे बढ़िया बात कही गई है - धोखाधड़ी की बात नहीं है खुली हुई साफ बात कि ब्रजवास करते समय एक सीमा रखना कि राधारानी के चरणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचेंगे। अब सब बातें कट गयीं, रुपया-पैसा, भोगादि सब समाप्त हो गए क्योंकि एक सीमा आ गई, एक सीमा का ध्यान करो, अपने को सीमा में बांधों। मनमाना काम नही करो, व्यर्थ का काम नहीं करो, सच्चे श्रीजी के भक्त बनो। श्रीराधारानी के चरण कमल के 'आमोद' अर्थात् आनन्द और मधुरता की सीमा बन करके ब्रज में रहो। सोचो तो केवल राधारानी के बारे में सोचो, गाओ तो राधारानी का यश गाओ "राधां ध्यायन् रसिक - तिलकेनात्त केली – विलासाम् ।" राधारानी का ध्यान करना, वह कैसी हैं ? रसिक तिलक श्याम सुंदर के साथ जिन्होंने विलास को स्वीकार किया उन राधारानी का ध्यान करते हुये इस जड़ शरीर को, इस जड़ शरीर के अभिमान को छोड़ करके मैं कब उनकी दासी बन जाऊंगी। राधारानी के रस विलास अथवा रास रस में पहुँचने के लिये यह शरीर बाधक है, इस शरीर की आसक्ति बाधक है। इस प्रकार समस्त आसक्तियों का त्याग करने से बहुत जल्दी, थोड़े समय में और इसी जन्म में ही काम हो सकता है परन्तु दु:ख की बात ये है कि हमारे जैसे लोग साधु बनने पर भी देहासक्ति में मरे जा रहे हैं, सदा इस शरीर के मान-सम्मान के बारे में ही सोचा करते हैं कि हमारी इतनी इज्जत है, हमारी प्रतिष्ठा है, कहीं कोई हमारी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कुछ न कह दे ।

यदि कोई भी जीव सांसारिक भय के कारण कथा-कीर्तन में नहीं आता है तो ये बिल्कुल गलत है। भजन में डूब जाओ ये ठीक है लेकिन भय, राग और द्वेष आदि विकारों का बने रहना दिखाता है कि हम अभी भगवान से बहुत दूर हैं। भय क्यों होता है ? इसे डंके की चोट पर ब्रह्माजी ने कहा है –

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः
। तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

(भागवत ३/९/६)

हे कृष्ण ! जब तक तुम्हारे चरणों का सहारा जीव नहीं लेता है तभी तक भयभीत रहता है और यदि भय है तो इसका अभिप्राय यह है कि हमने प्रभु का सहारा नहीं लिया। किसी तरह का भय है, समाज का भय, दुनिया का भय, निंदा का भय, बुराई का भय, कलंक का भय तो इसका मतलब यह है कि हम भगवान् से दूर हैं, ये शास्त्र कहता है। ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति में कहा है कि यदि जीव भगवान् की शरण में है तो डरेगा ही नहीं, किसी चीज का डर नहीं रहेगा। अरे ! इस दुनिया से क्या डरना, निंदा-स्तुति से क्या डरना और फिर सत्कार्य में डरना तो डूब मरने की बात है।। इसलिए भगवान् के भक्त को तो भय करना ही नहीं चाहिए।

क्रमशः

ऐसे लोगों का संग नहीं करना चाहिए जो स्वयं कामनाओं के भूखे हों। एक सिद्धान्त है – 'तीर्णास्तारयन्ति' अर्थात् जो खुद तर गया है वही दूसरों को तार सकता है। जो स्वयं डूब रहा है, वह हमें क्या बचायेगा? वह तो हमें भी डुबो देगा।

गौ-महिमा

(परम प्राप्ति का साधन-साध्य 'गौ-सेवा')

श्रीबाबा महाराज के सत्संग (१५/०७/२०१२) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी सुगीताजी, मानमंदिर, बरसाना)

एक बार राजा दिलीप अति शीघ्रता के कारण मार्ग में खड़ी हुई कामधेनु गाय को प्रणाम नहीं किए तो उसने शाप दे दिया – अरे जा, तेरे कोई पुत्र नहीं होगा | दिलीप जी को लगा हुआ श्राप कामधेनु की पुत्री 'नन्दिनी गाय' की सेवा से दूर हो गया | जब मनुष्य सेवा करता है तो सेवा के कारण सब पाप जल जाते हैं | इसीलिए भाव से सेवा करो | श्रीकृष्णलीलाकाल में ब्रज में बहुत से कष्ट आये | प्रतिदिन कोई न कोई असुर आ जाता था | गोपाल के जन्म के छठवें दिन ही पूतना आ गयी, फिर काकासुर आया, शुक्राचार्य का शिष्य श्रीधर आया पंडित बनकर | यशोदा जी ने उसे ब्राह्मण समझकर भोजन का निमंत्रण दिया, यशोदा जी भोजन बनाने चली गयीं तो उसने बालकृष्ण का गला घोंटकर मारना चाहा तो उन्होंने उसकी वाक् शक्ति नष्ट कर दी | इसी प्रकार शकटासुर आया, तृणावर्त आया, बकासुर, धेनुकासुर, वत्सासुर, अघासुर आदि अनेकों असुर आये किन्तु गौ-सेवा के कारण गौभक्त ब्रजवासियों का वे कुछ भी नुकसान न कर सके अपितु स्वयं अपने ही प्राणों से हाथ धो बैठे | ये सब ब्रजवासियों की गौभक्ति का प्रभाव था | इसलिए सभी को गौमाता की सेवा भाव से करना चाहिए | जहाँ भाव से गौ-सेवा होती है, वहाँ सभी विपत्तियाँ टल जाती हैं और सुख-समृद्धि की संवृद्धि होती है |

वल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थ २५२ वैष्णव की वार्ता में भक्तों के चरित्र वर्णित हैं, जिनमें एक भक्त हैं – द्वारकादासजी, वे बहुत ही भोले-भाले सीधे स्वभाव के थे, एक बार वह गोकुल में आये | बहुत दिनों से उन्होंने ब्रज का, गोकुल का नाम सुन रखा था | जब वह गोकुल पहुँचे तो गोकुल की शोभा देखकर उनका मन वहीं रम गया | (उस समय गोकुल में यमुनाजी का विशुद्ध जल-प्रवाह था | श्रीबाबामहाराज भी गोकुल जाकर वहाँ यमुना तट पर निवास किया करते थे | आज से कुछ वर्ष पूर्व तक यमुनाजी का शुद्ध नीला जल था |)

द्वारकादास गोकुल की शोभा देखकर वहीं रहने लगा, उसने गोस्वामी विट्ठलनाथजी से प्रार्थना किया कि गोकुल में मेरा मन लग गया है, आप मुझे गायों की सेवा दे दीजिए | गोस्वामीजी ने उससे कहा कि यदि तू मन लगाकर गायों की सेवा करेगा तो तुझे अलग से भगवत्सेवा करने की आवश्यकता नहीं है | गायों में ही ठाकुरजी-श्रीजी हैं | तू मन से गायों की सेवा करना और इसी से तुझे श्रीकृष्ण-प्राप्ति हो जाएगी | द्वारकादास गोकुल में वहीं रहकर गायों की सेवा करने लगा, सरल-सहज स्वभाव होने के कारण से बहुत ही श्रद्धापूर्वक 'गाय माता हैं, मेरी इष्ट हैं' इस भावना के साथ वह अपनी स्वयं की चादर से गायों को पोंछता था और गायों के नीचे सदा साफ-सफाई करके सूखी जगह रखता था | बरसात में भी सुंदर मिट्टी से गायों के रहने की जगह को सूखी रखता था | श्रीनाथजी उसकी सेवा से उस पर बहुत प्रसन्न हुए | एक दिन जब द्वारकादास गायों की सेवा कर रहा था तो श्रीनाथजी खिरक में पहुँच गये और वहाँ उसको दर्शन दिया तथा वहाँ खेलने लगे | श्रीनाथजी ने उस पर ऐसी दया किया कि उसके साथ खेलने लग गये और उससे इतना प्यार किया कि श्रीनाथजी की ग्वालमंडली में जब सब गोपबालक भोजन करते थे तो उसे भी अपने साथ भोजन कराने लगे | जब द्वारकादास को श्रीनाथजी भोजन कराने लगे तो गोस्वामी विट्ठलनाथजी की ओर से उसके लिए जो प्रसाद की पत्तल लेने की व्यवस्था थी, वहाँ से पत्तल लेना छोड़ दिया | पहले वह मंदिर में महाप्रसाद की

भाव के बिना कोई भी साधन 'भक्ति' नहीं देगा |

पत्तल लेने जाता था किन्तु अब उसने वहाँ से पत्तल लेना बंद कर दिया | केवल गोसांईजी का दर्शन करने ही जाता था | एक बार विट्ठलनाथजी ने उससे पूछा - पटेल ! अब तुम प्रसाद कहाँ लेते हो ? तुम मंदिर में तो जाते नहीं हो तो उसने हाथ जोड़कर कहा – "श्रीनाथजी वन में ग्वालबालों के साथ नित्य भोजन करते हैं | वहीं मुझे वन में भोजन करा देते हैं तो मैं पत्तल लेने क्यों जाऊँ ?" उसकी भोली बातों को सुनकर गोसांईजी बहुत प्रसन्न हुए | एक दिन वैष्णव मंडली में एक भक्त ने एक पद गाया - "**नाचत रास में गोपाल |**" द्वारकादास यह पद सुनकर खड़ा हो गया और बोला कि नहीं, ऐसे गाओ जैसे मैं बता रहा हूँ | उस गायक भक्त ने पूछा - कैसे गायें? द्वारकादास बोला – इस तरह गाओ -

नाचत घास में गोपाल |

घास में नाचत, घास में नाचत || नाचत .....

उस वैष्णव ने कहा – "यह क्या गाता है ? रास में मणियों का चबूतरा होता है, उस पर ठाकुरजी रास में नृत्य करते हैं और तू कहता है **–**

नाचत घास में गोपाल |"

सब लोग द्वारिकादास को पकड़कर गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पास ले गये और बोले कि यह हमारे पद को गड़बड़ करता है, हम लोग गाते हैं – **'नाचत रास में गोपाल'** और बीच में ही यह अपनी टांग मारता है और कहता है - नाचत घास में गोपाल | इसको आप रोकिये | गोस्वामीजी ने कहा कि यह गलत नहीं गाता है | इसने श्रीनाथजी को घास पर नाचते हुये देखा है | ब्रजभूमि क्या है ?

नद्यद्रिद्रोणिकुण्डादिकुञ्जान् संसेवतस्तव |
राज्ये प्रजाः सुसम्पन्नास्त्वं च प्रीतो भविष्यसि ॥

(श्रीमद्भागवत उत्तरमाहात्म्य - १/३९)

नदी, अद्रि (पर्वत) द्रोणी (पर्वत के भीतर जो गुफायें हैं), कुञ्जें, वन, कुण्ड आदि - ये सब ब्रज है | मकान ब्रज नहीं है | बड़े-बड़े मंदिर ब्रज नहीं है | (यह श्रीमद्भागवत-माहात्म्य का स्कन्दपुराण में लिखित श्लोक है |)

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उन वैष्णवों से कहा कि द्वारिकादास ने गोपालजी को नाचते हुये देखा है, इसको वास्तविक ब्रज के दर्शन हुये हैं | इसलिए तुम लोग इसको रोको नहीं | तुम दोनों लोग ठीक गा रहे हो | श्रीनाथजी की जहाँ इच्छा होती है, वहीं वह नाचते हैं | गोस्वामीजी की बात सुनकर सबको पता पड़ा कि द्वारिकादास ने न तो कोई जप किया, न तप किया, न कोई ठाकुर जी की सेवा किया, कुछ नहीं किया, केवल गायों की सेवा से इस पर श्रीनाथजी इतने प्रसन्न हो गये कि पहले तो इसको उन्होंने खिरक में अपना दर्शन दिया फिर दर्शन देने के बाद इसके साथ खेलने लग गए | खेलने के बाद इसको अपना भोजन खिलाने लग गए और इसीलिये इसने मंदिर से महाप्रसाद की पत्तल लेना छोड़ दिया और अब तो रास में नृत्य करते हुए श्रीनाथजी ने इसे दर्शन दिया | इसलिए गौ-आराधन से सब कुछ मिलता है, श्रीकृष्ण-प्राप्ति तक हो जाती है | इसीलिये कहा गया है -

गवां कण्डुयनं कुर्यात् गोग्रासं गौ प्रदक्षिणम् ।
गोषु नित्यं प्रसन्नासु गोपालोऽपि प्रसीदति ॥

(गौतमीय तन्त्र)

गायों को खुजलाने से, गौ-ग्रास देने से (गायों को हरा चारा, अन्न आदि खिलाने से), गायों की प्रदक्षिणा करने से गौमाता प्रसन्न होती हैं और उससे गोपालजी अति प्रसन्न हो जाते हैं | क्रमशः

जब अपना शरीर ही अपना नहीं हो सकता, तब दूसरे का शरीर अपना कैसे होगा? आश्रम अपना कैसे होगा...? धन- दौलत अपनी कैसे होगी...? ये सब मिथ्या हैं। ये सब विनाशकारी हैं। असंगता रूपी तलवार से आसक्ति को काटना है। जब तक जीव अपने शरीर की सत्ता को माने बैठा है तब तक वह अज्ञानी है। सत्ता एक परमात्मा की ही है। महर्षि दधीचि ने अपनी सत्ता को मिटाकर तुरन्त अपना शरीर दान दे दिया। जो भक्त है वह कभी भी अपनी सत्ता को नहीं बनाएगा। सत्ता केवल एक परमात्मा की है। जो अपनी सत्ता जमाने की कोशिश कर रहा है वह तो महामूर्ख है। हम सोचते हैं कि हमारे पास शक्ति है। हमारे पास शक्ति कहाँ है...? जब हम अपने ही शरीर की एक छोटी-सी भी क्रिया को नहीं रोक सकते तो हम अपनी सत्ता कैसे जमा सकते हैं?

गोपी-गीत

(उपरामता से ही उपासना सम्भव)

श्रीबाबामहाराज के सत्संग (१/११/१९९५) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका – साध्वी दिव्याजी, मानमंदिर, बरसाना)

रामानुज स्वामी परम श्रद्धावान गुरुभक्त अपने शिष्य से बोले - कूरेश ! जाओ और रंगनाथ भगवान् से अपनी आँखें माँग लो | कूरेश जी ने कहा कि मैं किस मुख से प्रभु से माँगूं क्योंकि माँगना तो आज तक आपने कभी मुझे सिखाया नहीं | इन तुच्छ आँखों को भला मैं प्रभु से कैसे माँगूं गुरुदेव ?

भक्त लोग दुनिया को देखना ही नहीं चाहते हैं | यह इच्छा तो हम लोगों के मन में रहती है कि नेत्र-दृष्टि जा रही है, घबराते हैं कि अब हमें दिखायी नहीं देगा, क्या होगा ? भक्तों की दुनिया तो अलग होती है | वे लोग इस दुनिया को देखना ही नहीं चाहते हैं क्योंकि उनके अंदर सच्ची उपरामता होती है | हम जैसे लोग दुनिया को देखना चाहते हैं क्योंकि हममें उपरामता नहीं है, हम दुनिया के बारे में सुनना चाहते हैं कि वहाँ क्या हो रहा है, जानना चाहते हैं दुनिया की बातों को कि ये कैसे हुआ | इससे पता पड़ता है कि अभी हममें उपरामता नहीं है | भगवान् ने कहा -

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया |
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ||

(गीता ६/२०)

चित्त उपराम हो गया, इसकी पहचान क्या है ? सभी लोग कहते हैं कि हमारा चित्त उपराम हो गया | श्री बाबा महाराज कहते हैं कि मेरा अंदाज है कि जो भी व्यक्ति मेरे पास आता है, उनमे अधिकतर लोग किसी प्रसंगवश यही कहते हैं कि हमारा चित्त उपराम है | उनकी बात को सुनकर मैं उनका खण्डन तो नहीं करता हूँ क्योंकि उन्हें दुःख होगा लेकिन आदमी अपने को इतना ऊँचा समझ लेता है, जितना ऊँचा वह वास्तव में होता नहीं है | उपरामता का लक्षण क्या है ? भगवान् ने गीता में जो उपरामता के बारे में कहा, उसे समझो और फिर अपने को तौलो, नापो तो पता पड़ेगा कि फिरोज दिल्ली दूरस्थ, अभी दिल्ली बहुत दूर है | भगवान् ने कहा कि जब योग साधन करते-करते (अब वह भक्तियोग हो, ज्ञानयोग अथवा कोई भी योग हो) चित्त निरुद्ध हो जाता है तब उपरामता आती है | उसकी पहचान क्या है – (गीता ६/२०) वह अपने से अपने को देखता है अर्थात् अपने भीतर प्रभु को देखता है और उसको हमेशा के लिए संतोष मिलता है अर्थात् फिर वह बाहर नहीं देखता है | यह उपरामता है | वह बाहर देखना ही नहीं चाहता है, बाहर की बात सुनना ही नहीं चाहता है, बाहर की बात जानना ही नहीं चाहता है | बाहर क्या हो रहा है, इससे उसे कोई प्रयोजन नहीं है | उपरामता का यह लक्षण भगवान् ने गीता में बताया है | हम क्यों जानना चाहते हैं कि हमारे बगल में जो आदमी बैठा है, वह क्या खा रहा है ? बगल में जो आदमी बैठा है, वह क्या कर रहा है ? ये सब हम क्यों जानना चाहते हैं ? वह बुरा कर रहा है कि अच्छा कर रहा है, हमें इससे मतलब ही क्या है ? महापुरुषों ने कहा है –

तेरे भावै होय जो, भलो बुरो संसार |
नारायण तू बैठकर, अपनी डगर बुहार ||

हमारी चेष्टायें बताती हैं कि अभी हममें उपरामता नहीं है, बहिर्मुखता है | कोई कितना भी तर्क दे लेकिन उसमें खोखलापन है |

कूरेशजी ने रामानुज स्वामी से कहा – "गुरुदेव ! मैं अपनी आँखों को भगवान् से कैसे माँगूं ? इन आँखों से दुनिया को देखकर क्या करूँगा ?" रामानुज स्वामी रोने लग गये और उनसे बोले कि तुम मेरे लिए नेत्र माँग लो, अपने लिए मत माँगो | जब गुरुदेव ने यह उत्तर दिया तो

भगवान् उस हृदय में रहते हैं, जिस हृदय में भावयोग से सफाई की गयी हो |

कूरेश जी चुप हो गये | अब इसका कोई जवाब उनके पास नहीं था | गुरुदेव का यह कहना कि तुम मेरे लिए रंगनाथ भगवान् से आँखें माँग लो, इससे कूरेश जी समझ गए कि यदि मैं आँखें नहीं माँगूंगा तो गुरुदेव माँग लेंगे | इसलिए वह बोले – "अच्छा गुरुदेव ! जो आपकी आज्ञा |" गुरुदेव प्रसन्न हो गए | उन्होंने कूरेश जी से कहा – "जाओ, जल्दी से रंगनाथ भगवान् के सामने जाओ |" कूरेश जी गुरु आज्ञा से लठिया टेकते हुए रंगनाथ भगवान् के मंदिर में गये | इनका जीवन अत्यंत विचित्र था | ये अत्यंत निःस्पृह संत थे | कभी उन्होंने प्रभु से कुछ माँगा नहीं था | लक्ष्मी जी ने एक बार उन्हें बुलावा भेजा था किन्तु ये ऐसे अकिंचन थे कि उनके पास भी नहीं गये और विचार किया कि माँ के पास क्या मुँह लेके जाऊँ | बड़ा विलक्षण जीवन उनका था, जबकि वह राजा थे | गुरु आज्ञा से वह रंगजी के सामने जाकर खड़े हो गये | भक्तों के लिए तो भगवान् साक्षात् रूप से उपस्थित रहते हैं | हम जैसे लोगों के लिए उनका अर्चा (प्रतिमा) स्वरूप रहता है | कूरेशजी रंगजी के सामने खड़े तो हो गये लेकिन कुछ देर तक सोचते रहे कि मैं भगवान् से क्या कहूँ क्योंकि उनका मन नहीं करता था कि मैं भगवान् से आँखें माँगूं , आँखें तो बहुत छोटी चीज हैं | यह तो प्रभु ने मुझ पर कृपा किया कि जो संसार का देखना बंद हो गया | अब उन आँखों को फिर प्रभु से वापस माँगू, ऐसा मन तो नहीं करता है लेकिन गुरुदेव की आज्ञा है तो क्या करूँ ? रंगनाथ भगवान् साक्षात् रूप से मुस्कुरा रहे थे कि देखो, आज ये क्या कहना चाहते हैं, क्या कहेंगे ? बहुत देर तक कूरेश जी चुपचाप खड़े रहे क्योंकि वह प्रभु से कुछ माँगना नहीं चाहते थे किन्तु माँगना जरूरी है क्योंकि ऐसी गुरुदेव की आज्ञा है | भक्त और भगवान् के भी विचित्र खेल हुआ करते हैं | जब कूरेश जी बहुत देर तक खड़े रहे तो अंत में पुजारी ने इनसे कहा क्योंकि पुजारी देख रहे थे कि ये अन्धे हैं,

अरे सुन लाल बिहारी, ललित ललन फूलों की गेंद खेलेगा |
सन्मुख यह देह निशाना है, तू चोट कहाँ तक पेलेगा ||
आँखों से आँखें भिड़ी रहें, रसरूप रंग को झेलेगा |

भगवान् का दर्शन तो इन्हें हो नहीं रहा है, ऐसे ही बहुत देर से चुपचाप खड़े हैं, पता नहीं क्या सोच रहे हैं, मन्दिर का पट लगने वाला है | पुजारी ने कूरेशजी से कहा - महाराज ! अब तो मंदिर के पट बंद होने वाले हैं, आप पधारो | कूरेश जी ने कहा - मैं चला जाऊँगा लेकिन कुछ माँगने आया था, एक क्षण रुक जाओ, बहुत देर से मैं माँगने के लिए खड़ा हूँ लेकिन मेरी हिम्मत नहीं हो रही है माँगने की, थोड़ी दया करो | कूरेश जी सम्मानित व्यक्ति थे, राजा थे, गुरुदेव के लिए उन्होंने अपनी आँखें नष्ट कर ली थीं, यह सारा संसार जानता था | उनका बहुत बड़ा सम्मान था | पुजारी ने इनसे कहा - अच्छा, हम कुछ क्षण रुकते हैं, पट पीछे लगायेंगे, आप जब तक रंगनाथ भगवान् से कुछ माँग लीजिये | कूरेश जी कुछ देर तक खड़े रहे फिर बोले - 'हे रंगनाथ भगवान् ! मेरे गुरुदेव की कोई वस्तु खो गयी है, वह आप दे दीजिये | (सच्ची मन की बात निकल गई) आँखें मेरी नहीं हैं और न ही मैं आँखों को चाहता हूँ |

यह भक्तों की स्थिति होती है | भक्तों के मन की यह स्थिति होती है कि उनका अपना कुछ होता ही नहीं है, न अपनी आँख है, न अपना कान है, न अपना पाँव है; न अपने देह-गेह हैं, इसको कहते हैं भक्त | श्रीमद्भागवत के नवयोगेश्वर संवाद में भक्त के यही लक्षण बताये गए हैं –

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥

(भागवत ११/२/५१)

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा ।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(भागवत ११/२/५२)

जिसका देह में अहं भाव नहीं है, वह भगवान् का प्यारा है | भक्त लोग शरीर को जब चाहे फूल की तरह, कूड़ेखाने की तरह फेंक देते हैं | इसको भक्त कहा गया है |

यह मजा उसी को मिलता है, जो शीश खाक में मेलेगा ||

यह मजा है कि भगवान् सामने खड़ा मुस्कुरा रहा है कि आज मेरा भक्त कुछ माँगने आया है लेकिन बोलता नहीं

है | क्यों, क्योंकि इसको पसंद नहीं है कि मुझे आँखें मिल जायें लेकिन गुरु की आज्ञा है | गुरु की आज्ञा से माँगेगा जबकि स्वयं माँगना नहीं चाहता है | माँगना नहीं चाहता किन्तु गुरु आज्ञा से माँगेगा, देखें क्या कहता है, भगवान् भी इसका मजा लेते हैं | जब कूरेश जी ने कहा – हे रंगनाथ भगवान् ! मेरे गुरुदेव की कोई चीज खो गयी है, आप उसको दे दो | इतना सुनते ही रंगनाथ जी मुस्कुरा गये और कूरेश जी के नेत्र खुल गये, उनकी दृष्टि वापस आ गयी, उनके वे नेत्र जिनको राजा ने सूए से कूच-कूचकर फुड़वाया था, वे नेत्र भगवत्कृपा से एकदम निरोग, दिव्य और सुन्दर हो गये | कूरेश जी ने देखा कि सामने साक्षात् रूप से रंगनाथ भगवान् दर्शन दे रहे हैं |

यह एक छोटा सा उदाहरण है शरणागति का | इसको प्रपन्न कहते हैं, न आँख मेरी है, न हाथ मेरा है, न पाँव मेरा है, न सिर मेरा है, न पेट मेरा है, न शरीर मेरा है, मेरा कुछ भी नहीं है |

मीरा जी ने कहा था – **मैं तो गिरधर के घर जाऊँ, गिरधर म्हारो साँचों प्रीतम | देखत रूप लुभाऊँ |**

शरणागति क्या है, ये नहीं कि हमको शॉल चाहिए, हमे कम्बल चाहिए, हमें गाती चाहिए, अरे, चाहिए-चाहिए क्या, तुमने तो एकदम से व्यापार शुरू कर दिया | भगवान् से तो तुम्हारा प्रेम ही नहीं है | ये लाओ, वो लाओ, खाने में हमको मीठा चाहिए, चावल नहीं मिला, दूध नहीं मिला, घी नहीं मिला, शक्कर नहीं मिली | अरे, तुम तो कामनाओं के कुआँ में गिर गये, भक्ति का तो तुमने व्यापार बना रखा है | कृष्णप्रेम दिवानी श्रीमीराबाई कहती हैं –

जो पहरावै सोई पहरूँ, जो दे दे सोई खाऊँ |
जहाँ बिठारे तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ||

इसको कहते हैं शरणागति, ऐसे भक्त का यशगान अकथनीय है, फिर भी प्रेमीजन स्वान्तःसुखाय कहते-सुनते हैं |

वो खुद उस मस्त की खबर ले रहा है |
जो उसके लिए बेखबर हो रहा है ||

अंत में रामानुज स्वामी अपने स्थान से चल पड़े, लोगों ने उनसे कहा कि आप यह जगह छोड़ दीजिये | क्योंकि इतना अधिक साम्प्रदायिक द्वेष था, प्राणों का खतरा रहता था | बाद में स्वामीजी ने यादिवाद्रिगिरि पर आकर यादिवाद्रिपति की स्थापना किया |

क्रमशः

सेवा में सात बातें ग्राह्य और सात त्याज्य बताई गयीं हैं-

इनमें से जो सात चीजें ग्राह्य हैं-

उनमें सबसे पहली चीज है – **विश्वास** – यदि विश्वास नहीं है तो सेवा की नींव समाप्त हो गयी। २. **अन्तःकरण की पवित्रता** – सेवा के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु है आत्मशौच; कामना रहित अन्तःकरण ही शुद्ध है।

३. **गौरव** – छोटी से छोटी सेवा भी गौरव से की जाय। सेवा को छोटी समझकर हिचकना नहीं चाहिए बल्कि गौरव का अनुभव करना चाहिए। ४. **संयम** – इन्द्रियों का दमन। ५. **शुश्रूषा** – सदा सेवा की इच्छा बनी रहे।

६. **सौहार्द** – प्रेमपूर्वक सेवा की जाए। ७. **मधुर-भाषण**।

सात चीजें त्याज्य हैं –

१. **काम** – सेवा में स्वार्थ सम्बन्धी कोई भी कामना नहीं होनी चाहिए। २. **दम्भ** – दिखावा नहीं होना चाहिए।

३. **द्वेष** – द्वेष नहीं होना चाहिए। ४. **लोभ** – किसी प्रलोभ से सेवा नहीं करना चाहिए। ५. **मद** – सेवा करने के बाद मन में अहंकार नहीं होना चाहिए। ६. **अघ** – पाप। ७. **प्रमाद** – सेवा में मनुष्य को कभी भी आलस नहीं करना चाहिए।

अनन्याश्रित भक्त श्रीदामापन्तजी

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित एकादशी-सत्संग (२७/११/२००५) से संग्रहीत

(संकलनकर्त्री / लेखिका-भक्तमालिनी साध्वी गौरीजी, मानमंदिर, मानपुर, बरसाना)

दक्षिण भारत में मंगलबेड़ा एक रियासत थी, वहाँ श्री दामापन्त जी नामक एक भक्त हुए हैं, उस रियासत के दामाजी शासक थे, लेकिन बेदर के मुसलमान बादशाह के आधीन इनकी रियासत थी, इसलिए बादशाह के लिए इनको टैक्स देना पड़ता था क्योंकि उन दिनों मुसलमानों ने दक्षिण भारत को जीत रखा था और उन मुसलमानों की राजधानी गोलकुंडा थी | एक बार वहाँ भीषण अकाल पड़ा, जिसके कारण वहाँ बहुत दिनों तक वर्षा नहीं हुई, वर्षा न होने से अन्न उत्पन्न नहीं हुआ | उस अकाल को लोगों ने 'दुर्गा देवी' नाम दिया था | प्राचीनकाल में यातायात के साधन ट्रक, गाड़ियाँ आदि नहीं थीं कि सामान पहुँच जाये | आजकल तो हवाई जहाज से भी सामान पहुँच जाता है | प्राचीन समय में जहाँ अकाल पड़ता था, उपयुक्त साधनों के न होने से वहाँ कोई सहायता नहीं पहुँच पाती थी | उस समय अकाल जब पड़ा तो लोगों ने पेड़ों की छाल और पत्तों को खा-खाकर जीवन-निर्वाह किया | श्रीदामापन्तजी बड़े ही दयालु भक्त थे, इन्होंने सारा भंडार खोल दिया कि प्रजा का उदर-पोषण हो जाए | मन्त्रियों ने कहा कि आपको मुसलमान बादशाह का डर नहीं है क्या ? दामापन्तजी बोले कि वह मुसलमान बादशाह मुझे मार देगा और क्या करेगा, ये प्रजा तो भूखों मर रही है, भण्डार खोलने से यदि हजारों के प्राण बच जायें और मैं अकेला समाप्त हो जाऊँ तो कोई बात नहीं है | इस प्रकार श्रीदामाजी ने सारा भंडार लुटा दिया और इधर बेदर के बादशाह के पास खबर पहुँच गयी कि दामापन्त ने भंडार खोल दिए हैं और सब कुछ हिन्दुओं को लुटा दिया है | बादशाह ने सैकड़ों सिपाही भेजे और उन्हें आदेश दिया कि दामापन्त को पकड़ के लाओ | जब सिपाही गये, उस समय दामापन्त भजन में बैठे थे | सिपाहियों ने दामापन्त जी के महल का दरवाजा खटखटाया, उनकी स्त्री बड़ी सती थी, उनमें सिपाहियों को रोकने की हिम्मत तो थी नहीं क्योंकि वह संख्या में बहुत अधिक थे लेकिन ये सती थीं और सती का तेज अलग होता है | ये अकेले ही गयीं और सिपाहियों से कहा – "अभी तुम हमारे पति को नहीं छू सकते हो, अभी वे भजन में हैं इसलिए तुम लोग कुछ देर रुको |" उनकी बात और उनका तेज ऐसा था कि सिपाही रुक गये और बोले – "ठीक है |" जब दामापन्तजी भजन से उठे तो सिपाहियों ने उनको पकड़ लिया और बोले कि आपको बादशाह ने बुलाया है क्योंकि आपने सरकारी खजाना लुटा दिया है | दामापन्तजी बोले – "हाँ, चलो हम चलते हैं |" राजमहल से जब वह चले, तब सिपाहियों ने कहा कि आपको हथकड़ी पहननी पड़ेगी क्योंकि ऐसा बादशाह का हुक्म है | दामापंतजी बोले – "ठीक है, पहना दो |" सिपाहियों ने दामाजी के हाथों में हथकड़ी डाल दिया और प्रजा रोती रही | मुसलमानी शासन के समय में कोई कुछ कर नहीं सकता था | सब रो रहे थे लेकिन वह चले गये | गोलकुंडा के रास्ते में पंडरपुर पड़ता है, पंडरीनाथ भगवान् वहाँ के विख्यात ठाकुर हैं, जैसे ब्रज में प्राचीनकाल में श्रीनाथ जी प्रसिद्ध थे | सिपाहियों से दामापन्तजी ने कहा कि हम एकबार पंडरीनाथ भगवान् का दर्शन करना चाहते हैं | सिपाहियों ने कहा – "ठीक है, आप दर्शन कर लें |" सिपाही भी जानते थे कि इन्होंने कोई बुरा काम तो किया नहीं है जो ये भागने की कोशिश करेंगें | अतःसिपाहियों ने दामाजी को दर्शन करने की अनुमति प्रदान कर दी | दामापन्तजी भगवान् के सामने मंदिर में गये और कीर्तन करते हुए नाचने लग गये | वह जानते थे कि बादशाह बड़ा क्रूर है,

विश्वास रखो कि प्रभु हमारे हैं। हम सौ बार भी गिरेंगे तो भी प्रभु फिर उठाने का प्रयत्न करेंगे।

मुझको अवश्य फाँसी की सजा देगा | अतः उन्होंने मंदिर में भगवान् से कहा कि हे नाथ ! मैं आपका आखरी दर्शन कर रहा हूँ, अब वापस कभी नहीं आ पाऊंगा, ऐसा कहते हुए वह कीर्तन करने लगे –

गोपाल कन्हैया प्यारे, ओ मोहन मुरली वारे |
राधा के प्राण प्यारे, ओ मोहन मुरली वारे |
तू आजा नन्द दुलारे, दर्शन दे मेरे प्यारे ||
ओ मोर पंख सिर धारे, कानन में कुंडल वारे |
गोपाल कन्हैया प्यारे ....

कीर्तन करते-करते दामाजी प्रेमावेश में गिर पड़े और रोते हुए प्रभु से बोले कि हे दीनबंधु ! अब मैं जा रहा हूँ, जीवन तो मेरा नहीं बचेगा लेकिन आपका दर्शन हो गया, ये बहुत प्रसन्नता की बात है और ऐसा कहते हुए चल पड़े वहाँ से, उनके हाथों में हथकड़ी थीं | इधर श्यामसुंदर ने एक चमार का वेष बनाया और काली कमली ओढ़कर बादशाह के दरबार में पहुँचे | वहाँ पहुँचने पर द्वार पर खड़े सिपाहियों से बोले कि मुझको दामापन्त जी ने भेजा है | पहले तो सिपाही उनका मैला कपड़ा देखकर उन्हें फटकार रहे थे लेकिन जब उन्होंने कहा कि दामापन्तजी ने बादशाह के लिए सन्देश भिजवाया है कि तुम अपना पैसा ले लो जितना भी है, मैं सब कुछ चुका दूँगा | सिपाहियों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह मजदूर ऐसा कह रहा है | उसे लेकर वे बादशाह के पास गये तो उसने देखा कि काला कंबल ओढ़े हुए एक व्यक्ति कह रहा है कि हम दामापन्त जी के सेवक हैं, आपके भंडार का जितना पैसा है, आप ले लीजिये | बादशाह ने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है तो उसने कहा – "बिट्ठू चमार |" यह विट्ठल भगवान् का ही नाम है, उन्होंने अपना नाम इस प्रकार बताया कि कोई पहचान भी नहीं पाया लेकिन जब उस कंबल में से थोड़ा-सा मुँह दिखाया तो वह बादशाह आश्चर्य से देखता रह गया और सोचने लग गया कि इतना सुंदर कहीं चमार होता है, ऐसा रूप तो मैंने कभी देखा ही नहीं, फिर बादशाह बोला – "कहाँ है तेरे पास भंडार के रुपये?" तो बिट्ठू ने एक छोटी-सी थैली दिया | बादशाह हँस गया और बोला कि इतनी-सी थैली से भण्डार का दाम चुक जाएगा ? बिट्ठू बोला – "हाँ, इसी से तुम्हारा दाम चुक जायेगा |" बादशाह फिर बोला –"जाओ और इस थैली को खजांची को दे दो |" सिपाही उसे ले गये, साथ में बिट्ठू चमार भी गया | खजांची ने पूछा कि क्या लाया है ? बिट्ठू बोला – "थैली है, इसे ले लो |" खजांची बिट्ठू चमार से बोला – "लाखों मुद्राएँ जिन्हें तुम लोगों ने नष्ट कर दिया है, वे एक थैली से कैसे चुक जायेंगी ?" बिट्ठू बोला – "अरे, तुम इसमें से लेकर के तो देखो, फिर जब तुम्हारा नहीं चुके तो बताना |" खजांची ने एक बहुत बड़ा परात लिया और उसमें छोटी-सी थैली उल्टी किया तो वह परात पूरी भर गयी लेकिन थैली उतनी की उतनी ही थी | सिपाही अत्यंत आश्चर्यचकित होकर देखने लग गये और बोले – "ये क्या चक्कर है कि ये थैली तो खाली हुई नहीं और परात पूरी भर गई, फिर वे बोले – "अच्छा और दूसरा पात्र लाओ |" तो बड़ा कढ़ाव लाया गया और उसमें थैली उल्टी की गई तो सम्पूर्ण कढ़ाव भर गया किन्तु थैली वैसी की वैसी भरी रही | सब सिपाही दौड़े बादशाह के पास और बोले – "हुजूर ! उस चमार में जाने क्या चमत्कार है ? उसने तो बड़े-बड़े कढ़ाव भर दिये हैं, आपके भंडार का तो बहुत अधिक धन चुका दिया है |" बादशाह बोला – "अच्छा ! दामापन्त का सेवक ऐसा है ? अरे ! मुझसे बड़ी भूल हुई | दामापन्तजी को कारागार से छुड़ाकर व हथकड़ी हटाकर के लाओ, ये तो हमसे बहुत गलत काम हुआ है | सब सिपाही दौड़े दामापन्त जी के पास और उनकी हथकड़ी काटी गईं, कैदखाने से मुक्त कर दिया गया | जब बादशाह के पास उन्हें लाया गया तो बादशाह कहने लगा – "मैं आपका गुनहगार हूँ दामापन्त जी, आपने तो जाने कितना धन हमको दे दिया लेकिन आपका सेवक कहाँ है ?" दामापन्त जी बोले – "मेरा सेवक कौन है.....! अरे !! मैंने आपको धन कहाँ दिया है ?" बादशाह बोला – "अरे ! वही जो अभी आया था |" दामाजी ने पूछा – "कौन आया था ?" बादशाह ने कहा – "उसके शरीर पर काली कमली थी और वह बड़ा सुंदर था, उसने कहा था कि मैं बिट्ठू चमार

हूँ | अरे ! वह बिट्टू कहाँ है ? एक बार फिर से दिखाओ, कैसी मतवाली आँखें थी उसकी, बस एक बार फिर से उसे दिखा दो |" दामापन्त जी समझ गये कि ये तो श्यामसुंदर की लीला है, न तो मेरा कोई बिट्टू चमार सेवक है, न मेरे पास कोई पैसा-धेला है | दामाजी बोले – बादशाह ! मैं उस बिट्टू को नहीं दिखा सकता | बादशाह ने पूछा – "क्यों ?"

दामापन्त जी बोले – "क्योंकि वह बिट्टू मेरा सेवक नहीं था |" बादशाह ने पूछा – "फिर कौन था वह ?" दामापन्त जी बोले – "तुम नहीं जान सकते, वह वही था जिसका मैं दर्शन करने गया था |" लेकिन बादशाह तो पागल हो गया और पुकारने लगा –

कहाँ गया, कहाँ गया, वो बिट्टू प्यारा कहाँ गया ?
काली कमली वाला बिट्टू, हाथ लकुटिया वाला बिट्टू,
रुपया देकर चित्त चुराकर, मुझको घायल कर गया |

बादशाह बोला – "दामा जी ! मैं बिट्टू के बिना जी नहीं सकता हूँ |" सारे वजीर आश्चर्य कर रहे हैं कि क्या हो गया इस बादशाह को | बादशाह बोला –

उसके बिना जिऊँ मैं कैसे, उसके बिना रहूँ मैं कैसे |
कोई पीर न समझे मेरी मैं तड़पता रह गया |
कहाँ गया तू मुझे बता दे, बिट्टू को तू मुझे दिखा दे |
(अरे) श्रीदामा मैं चेरा तेरा प्राण प्यारा कहाँ गया |
तेरा ही वह सेवक प्यारा, मेरे नैनों का वह तारा,
मेरे प्राण बचा ले दामा, मैं सेवक तेरा हुआ ||
कहाँ गया.....

दामापन्त जी रोने लग गये और बोले – "बादशाह ! वह मेरे हाथ में नहीं है, वह तो तीनों लोकों का स्वामी है, आया और चला गया, उसको बुलाने का यही एक रास्ता है कि हम सभी लोग उस भगवान् का नाम लें, कीर्तन करें, वह अपनी इच्छा से आता है और अपनी इच्छा से जाता है और उसका कोई रास्ता नहीं है |"

☀ विश्वास ☀

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

भगवान् से मिलने का एक ही रास्ता है वह है विश्वास । बिना विश्वास के प्रभु से नहीं मिला जा सकता । बिना विश्वास के कोई भी साधन फल नहीं देगा । भगवान् एक विश्वास हैं । प्रभु सर्वत्र हैं परन्तु ऐसा हमारे हृदय में अभी बैठा नहीं है । हमारे पाप ही हमारे अन्दर सन्देह पैदा करते हैं ।

तस्मादज्ञानसम्भूतं.....योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ (गीता ४/४२)

विश्वास पूर्वक प्रभु स्मरण करने में अनन्त शक्ति है । हम मुसीबत के कारण प्रभु स्मरण करते हैं, सहज में नहीं । शुद्ध स्मरण में कोई भी कारण नहीं होता । विश्वास के आगे प्रभु हार जाते हैं । कबीरदासजी सारी उम्र काशी में रहे, परन्तु उन्होंने अपना शरीर मगहर में जाकर छोड़ा । उस जगह पर जाकर छोड़ा, जहाँ पर कहते हैं कि शरीर छोड़ने से नरक मिलता है । उन्होंने कहा –

"जो कबिरा काशी मरै रामहि कौन निहोरा ।"

ऐसा दृढ़ विश्वास था उनका । उन्होंने अपने एक पद में लिखा भी है –

"कहत कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो रहूँ विश्वास में ।"

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीबाबामहाराज द्वारा सुप्रवचित श्रीमद्भगवद्गीता के सत्संग (१४ जनवरी २०१२) से संग्रहीत

(संकलनकर्ता / लेखक –संतश्री ध्रुवदासजी भक्तमाली, मानमंदिर, बरसाना)

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः |
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

न – नहीं, **च** – और, **एतत** – यह , विद्मः – जानना, कतरन्नो गरीयो – कौन-सी बात श्रेष्ठ (बड़ी) है ? यद्वा जयेम – कि हम जीतें या वे लोग हमको जीतें (यदि वा नो जयेयुः), जीतें या हारें, बड़ों से हारना ही अच्छा है और युद्ध में जाएँ तो हारना ठीक नहीं | हम जीतें या हम लोगों को वे जीतें, क्योंकि यानेव हत्वा – जिनको मारने के बाद, न जिजीविषामः – जीने की इच्छा हमारी नहीं है, बड़े सम्बन्धियों की अगर मृत्यु हो तो जीने से क्या फायदा? **'तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः'**– वे ही प्रमुख भीष्म, द्रोण आदि वरिष्ठ लोग जो धृतराष्ट्र के साथी हैं, सामने खड़े हैं मृत्यु के लिए, इनको मारके हम जीना नहीं चाहते हैं और वे सामने खड़े हैं | दादा जी हैं, गुरु जी हैं यदि ये ही मर गए तो हमारे जीने से क्या लाभ ? इस श्लोक में अर्जुन की गुरु- भक्ति, पितृ-भक्ति दिखाई पड़ती है, वे गुरुजनों और अपने से पूज्यजनों के बिना जी नहीं सकते | अर्जुन के मन में भीष्म, द्रोण के प्रति इतना अधिक सम्मान था कि उनका यह विचार था कि इनके बिना जीना ही बेकार है जबकि आजकल के लोग तो अपने से वरिष्ठ गुरुजनों और सगे सम्बन्धियों के बिना केवल जीते ही नहीं अपितु मौज मारते हैं, प्रसन्न रहते हैं जो कि आर्य-संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है |

श्लोक (गीता २/५) से संबंधित महाभारत के कर्णपर्व के कथानक का ऊपर जो वर्णन किया गया है, इसको पढ़ने से गुरु भक्ति, पितृ भक्ति और बड़ों के प्रति भक्ति मिलेगी अन्यथा जीने से कोई लाभ नहीं है | यदि भगवान् बीच में हस्तक्षेप न करते तो युधिष्ठिर की मृत्यु हो गयी होती और अर्जुन भी आत्महत्या कर लेते, इन दोनों को भगवान् ने बचाया और दोनों की प्रतिज्ञा भी पूरी हुई | बड़ों का सम्मान करना ही महाभारत में सिखाया गया है | अर्जुन ने भगवान् से स्पष्ट कह दिया कि अगर इन (गुरुजनों) को हम मार दें, तो खून से भीगा भोजन करेंगे, इसलिए अर्जुन पीछे हटे और बोले कि हम भिक्षा माँग के खा लेंगे | हर लड़के को बड़ों की आज्ञा माननी चाहिए | हठ बड़ों से नहीं करना चाहिए | गीता पढ़कर के जो मनुष्य बड़ों का सम्मान नहीं करता है वह तो महा नालायक है | जब अर्जुन ने भीख माँग के खाना अच्छा समझा और सब कुछ छोड़ दिया, अपने से बड़ों का इतना सम्मान किया तो गीता का प्रारम्भ बड़ों के प्रति सम्मान से होता है, जिसके अन्दर ये गुण नहीं हैं, उसका गीता पढ़ना बेकार है | गीता बड़ों के प्रति भक्ति भी सिखाती है | गीता में यहाँ तक कि अर्जुन ने कहा – हम जीवन भर भीख माँगकर खा लेंगे लेकिन बड़ों से नहीं लड़ेंगे, अर्जुन इतना बड़ा भक्त था | अर्जुन को मोह क्यों हुआ ? ये मोह सामान्य मोह नहीं था, उनका मोह गुरु-भक्ति, पितृ-भक्ति के कारण था कि मैं अपने से बड़े पूज्य गुरुजनों को कैसे मारूँ ? तो मूल कारण था उनकी गुरु-भक्ति या पितृ- भक्ति | अर्जुन का अर्थ क्या होता है ? अर्जुन का अर्थ होता है - सीधा, वह इतने सीधे थे कि इनमें कोई हठ आदि नहीं था | ये बात गीता से सीखनी चाहिए, नहीं तो गीता पढ़ना बेकार है | बड़ों का सम्मान, बड़ों से बोलना-चालना, उठना–बैठना ये सब सम्मानपूर्वक रहे, बस यही गीता है |

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

कार्पण्य – कृपणता, कृपणता क्या चीज है ? कृपणता कहते हैं कंजूसी को, कंजूसी क्या है ? भगवान् ने कहा है – "कृपणाः फलहेतवः" (गीता २/४९) फलों की इच्छा करना ही कृपणता है | जिसको जितने फल की इच्छा होती है, उतना ही कंजूस बन जाता है | इच्छा कृपण बना देती है | यहाँ पर अर्जुन के लिए कार्पण्य से तात्पर्य है युद्ध जीतना, राज्य चाहना | इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि हम लोगों में कार्पण्य दोष आ गया है, फल की इच्छाओं ने हमको कृपण बना दिया, तभी तो हम लड़ रहे हैं | फल की इच्छा आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है | इसलिए कार्पण्य दोष का अर्थ है इच्छा | किसी में भी, चाहे वह बुड्ढा, जवान, स्त्री, पुत्र, माता–पिता आदि ही क्यों न हों, यदि कृपणता है तो गिड़गिड़ाना पड़ेगा | माँगते समय आदमी छोटा बन जाता है, कृपण बन जाता है | कृपण के भाव को 'कार्पण्य' कहते हैं | इसीलिए अर्जुन ने कहा कि कार्पण्य दोष से मेरा स्वभाव उपहत अर्थात् नष्ट हो गया है | 'कृपणता' स्वभाव को नष्ट करती है, जैसे - किसी के पास माँगने गए तो अपना स्वभाव माँगना नहीं है लेकिन कार्पण्य ले गया | अर्जुन कहते हैं कि इसी प्रकार हमारा जो वास्तविक स्वभाव है कि हम क्षत्रिय हैं, हमको क्षात्रधर्म में उदार होना चाहिए; ब्राह्मण, गुरु से नहीं लड़ना चाहिए लेकिन कार्पण्य दोष के कारण हमारा स्वभाव नष्ट हो गया | दूसरी बात ये है कि 'धर्मसम्मूढचेताः' मेरे चित्त में सम्मूढता - मोह आ गया | एक तो स्वभाव नष्ट हुआ मेरा, दूसरा चित्त में सम्मोह पैदा हो गया | सम्मोह क्यों पैदा हुआ ? धर्म के कारण से | धर्म मोह पैदा करता है | धर्म क्या है ? ये हमारे रिश्तेदार हैं, नातेदार हैं इनको कैसे मारें हम ? धर्म सामने आके खड़ा हो गया कि ये गुरु हैं, इनसे नहीं लड़ो, ये बाबा जी हैं, दादा हैं इनसे नहीं लड़ो, ये चाचा हैं, ये ताऊ हैं, सब परिवार खड़ा है, जीजा हैं, साले हैं, इन परिवार वालों को मारना ठीक नहीं है, इस प्रकार धर्म से सम्मूढ चित्त हो गया, चित्त में मोह पैदा हो गया | एक तो स्वभाव नष्ट हुआ, दूसरा धर्म ने मोह पैदा कर दिया |अर्जुन ने भगवान् से कहा कि ऐसी स्थिति में 'यच्छ्रेयः स्यात्' 'छ्रेय' माने जो निश्चित कल्याण का रास्ता है, 'तन्मे ब्रूहि' वह मुझसे आप बताइये, क्योंकि 'शिष्यस्तेऽहं' मैं आपका शिष्य हूँ, शाधि – मुझ पर शासन करो, त्वां प्रपन्नम् – मैं आपकी शरण में आया हूँ | शिष्य किसको कहते हैं ? किसी साधु से मंत्र ले लिया और उससे कहा कि तुम हमारे गुरु हो, हम तुम्हारे चेला हैं, इसे शिष्य नहीं कहते हैं | "शासितुं योग्यःशिष्यः" जो हमेशा शासन के योग्य है, जिस पर शासन किया जाय और जो शासन माने | गुरु जी कह रहे हैं – बेटा ! त्याग करो, जो शासन नहीं मान रहा है, वह शिष्य कहाँ है ? अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ | शाधि – आप मेरे ऊपर शासन करो | शासन कैसे करें तो अर्जुन भगवान् से बोले कि मैं आपकी शरण में हूँ | जो शरण में होता है वही शासन मानता है | शरण में जो नहीं है वह शासन क्यों मानेगा ? एक रास्ते चलते आदमी से कहो कि ऐसा करो तो वह नहीं मानेगा | इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं प्रपन्न हूँ, तुम्हारी शरण में हूँ, इसलिए मेरे ऊपर शासन करो |

क्रमशः

☀ भक्ति को नापने का थर्मामीटर ☀

हमारे भीतर ऐसी कौन सी चीजें हैं जो हमें भगवान् से मिलने नहीं देती। अपने भीतर घुसो। अपने अंदर ही विकार बनते हैं। जितना हमारा मन संसार में है उतना ही हम भगवान् से दूर हैं। जितना हमारा मन संसार से दूर है उतना ही हम भगवान् के पास हैं। ये भक्ति को नापने का थर्मामीटर है जैसे बुखार को नापने का होता है। जहाँ मन होगा वहीं हम होंगे।

प्रातःकालीन सत्संग

(शरणागति से ही सर्वधर्म-संसिद्धि)

श्रीबाबामहाराज के प्रातःकालीन सत्संग (१४/१२/२००६) से संग्रहीत

संकलन/लेखन- संतश्री भामिनीशरणजी

चाहे लौकिक धर्म हो, चाहे वैदिक धर्म हो, सभी धर्मों की सार्थकता (परम सिद्धि) भागवत-धर्म (श्रीभगवान् की शरणागति) में ही है | वैदिक धर्म है – 'माता-पिता, पति के प्रति निष्ठा और उनसे यदि मनुष्य कपट करता है तो पितृ-धर्म सिद्ध नहीं होगा, मातृ-धर्म सिद्ध नहीं होगा तथा पति-धर्म भी सिद्ध नहीं होगा | भगवान् ने गोपियों से कहा –

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥

(भागवत १०/२९/२४)

कपट छोड़कर यदि 'स्त्री' पति की सेवा करती है तो वह ठीक है, सती है, नहीं तो वह दुराचारिणी है, उसका पतिधर्म ही सिद्ध नहीं होगा | स्त्री को पति के अतिरिक्त सास-ससुर, पति के बन्धु-बांधवों की भी सेवा करनी चाहिए | आजकल तो विवाह होने के बाद लोग अपने माता-पिता से अलग हो जाते हैं | स्त्रियाँ भेदबुद्धि पैदा कराकर सास-ससुर और ससुराल वालों से अलग हो जाती हैं | ऐसा हमारी भारतीय-संस्कृति नहीं सिखाती | विदेशों में तो ऐसी सभ्यता है कि गलती करने पर माँ-बाप अपने बच्चे को पीट भी नहीं सकते हैं | अगर माँ-बाप ने बच्चों को डाँट दिया, पीट दिया तो कानून के अनुसार उनको सजा मिलती है | जब ऐसी संस्कृति है तो वहाँ न पितृ-धर्म है, न मातृ-धर्म है, न लोक-धर्म है, न वेद-धर्म है, केवल पशु-धर्म है | जैसे - पशु किसी की नहीं सहता है, कुत्ता अपने बाप की भी नहीं सहता, कुतिया अपने पति कुत्ते की नहीं सहती है | कुत्ता भौंकता है तो वह भी उस पर भौंकती है | विदेशों में न तो पितृ-धर्म है, न मातृ-धर्म है, कोई भी धर्म नहीं है, वहाँ केवल पशु-धर्म है, स्वतन्त्र हो गये अब किसी की मत सहो | न वहाँ कोई माँ है, न बाप है, न पति है, केवल स्वार्थ है | इसीलिए विदेशों में तो कोई धर्म ही नहीं है, केवल पशु-धर्म है | पश्चिमी देशों के लोग इसी ऐंठ में रहते हैं कि हम बहुत ऊँचे हैं, हमलोग forward (विकसित) हैं तथा भारत के लोग backward (पिछड़े) हैं | जहाँ धर्म है, उसे लोग पिछड़ा मानते हैं | पश्चिमी देशों में इतने व्यापक रूप से ईसाई-धर्म फैला है लेकिन बड़ा आश्चर्य है कि उद्दण्डता करने पर वहाँ पिता अपने बच्चे को डाँट नहीं लगा सकता, चाँटा नहीं लगा सकता, क्या धर्म है वहाँ ? केवल पशु-धर्म है; जैसे - कुत्ते, गधे अपने बाप की नहीं सह सकते | गधा अपनी माँ को दुलत्ती मारेगा, इसी तरह पश्चिमी देशों में कोई धर्म नहीं है | इसलिए धर्म वही है जिसमें चारों चरण रहते हैं, चाहे वह भागवत-धर्म है, चाहे वैष्णव-धर्म है, चाहे कोई रसिक बन जाये, धर्म के चार चरण जरूरी हैं |

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः । अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥(भागवत १/१७/२४)

ये चरण नष्ट कैसे होते हैं? चार तो धर्म के चरण हैं - तप, शौच, दया और सत्य तथा चार अधर्म की भी टाँगें हैं, वे धर्म की टाँगों को तोड़ देती हैं | अधर्म ज्यादा बलवान है, वह धर्म की टाँगों को तोड़ देता है | जो सिद्ध पुरुष हैं, उनकी बात अलग है, बाकी हमलोगों की टाँग तो अधर्म तोड़ देगा | अधर्म की टाँगें क्या हैं ? पहली टाँग है - स्मय (अहं भाव), इससे सब तप नष्ट हो जाता है, सब भजन-साधन खत्म हो जाता है | अपने को हम विरक्त समझें, विद्वान समझें, भक्त समझें, रसिक समझें - ये सब अहं है और यही ज्यादातर सिखाया जाता है, जबकि यह मूर्खता है | यदि हम फालतू असत् चर्चा करते हैं तो अनन्य प्रेमी भक्त कैसे हो जाएँगे ? इसलिए जब तक हमारे चित्त में राग-द्वेष है, भेदबुद्धि है; तब तक हम अनन्य शरणागत भक्त नहीं बन पाएँगे |

भक्त कभी गिरता है तो उसी क्षण गिरकर तुरन्त उठ जाता है और फिर से ज्ञान सम्पन्न हो जाता है।

रजस्तमोभ्यां यदपि.....दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥ (भागवत ११/१३/१२)

DHAAM-NISHTHAA

Raviji Monga, New-Delhi

It is actually a baseless argument put forward by them. It is as good as saying that if we do not earn money, how shall we sustain a living. This is what *grihasthas*(householders) often put forward – "How shall we eat two square meals if we do not make money".

Ohh, just stay back in Braj and see

Bansi Ali Satya Satya poojihai sabh saadha

Try once relying on Shri Radha. Actuall relying on Shri Radha means " Bhojan siyen ko bhejyoy paiyen". There are several examples of such devotees like Raghav Das ji, Uma Pandit ji etc. However, if this wander lust exists in our minds, it shall be impossible to realize Dham Nistha.

Now, the third category of Dham Waas. *Yat Premamrit Sindhu saar rasdam Paapaik Bhaajaam.* One shall surely be delivered from his sins. For example – Indra had ordered that it is because these Brajwasis had relied on Krishna, that they deserve punishment. He declared

" *Yesham Shrivalav liptam*" – "These Brajwasis have turned intoxicated and plump by drinking the abundant milk available in Braj. Their cattle stock wealth has grown beyond limits and hence they have turned arrogant. Moreover, this Krishna has pumped them up as one pumps up a counch."

" *Krishna adhmail aitmanaam*"-" This Krishna has even questioned by being. These Brajwasis have gone wild."

"*Dhunuth Shri Madastam Baam*" – "Go and pulverize their intoxication. None should be spared. Not even a young calf". Now what has a mere calf done against Indra? How has a meek cow acted against Indra?

"Pashaon nayat sanshayam". We should all think about what Indra is saying. It is a big offence. He says that not even a single animal be spared. Think about it. Even if one cow is killed, it is considered to be a big offence. In this case, he is ordering millions of cows to be slaughtered without exception of even a little calf. Consider the size of slaughter he was about to create and the size of offence he was about to commit - *Pashoon nayat sanshay.* This was his order. The clouds of *Pralay* advanced on his orders. What was a mere Braj to them when they had the powers to destroy the whole world.

"Itham magwata gyapte megha nirmuktaiy bandhana" – " Let loose the clouds of *Pralay*. Unshackle them". They were no ordinary clouds. They were clouds of parlay. They are called samvartak clouds. They are

from different types of storms - the samvartak storms. Once loose they started hovering over Braj.

"Nand gokul maasrai peedia masoor saa". They started inflicting extreme pain to Brajwasis. Think about it. Such immense pain. Such a big offence.

"Shool Shool Varshaa dhaara". Jets of water with the size of tree trunks hammered down on Braj.

"Munchatswa bhavesh abhikshen swa". One after the other such downpours pelted upon them. Such massive volumes poured that the very earth was not visible to the eye. The sound of thunder lightning was such that one could die of shock. Large rocks hurled down upon Braj. Ferocious storms blew all over. They were samvartak storms. Think of the kind of agony it all caused to the Brajwasis.

In conclusion, Indra committed a huge offence. However, all of it was pardoned because of Dham. Dev Matas had asked Indra to have cows lead the group when he went to Krishna for forgiveness. They asked him to worship Govardhan and take shelter of Krishna. When they all came, Surubhi was asked to lead from the front. She had first paid obesiences

Krishna Krishna Maha Vishwatmin Vishvabhaaw
Evam Krishna Upmantray Surubhi
Akash Ganga Airawat karo Dhritiyay

Waters were arranged from the Milky way Galaxy, Surubhi's milk. Several Maharishis appeared and worshipped Krishna. Govind Kund was created. All this is mentioned in detail in Brahm Vaivart Puraan.

Krishna said "*Siyatham swalhkare shiyankh stamb varjitay*" – "Dham Bhagwan has the potency to pardon sins which no other can pardon." There are hundreds of scriptural evidences on this. I speak often about them like Mathura Mahatmy, Padma Puran where we find that Dham Bhagwan pardons sins that even Krishna can not pardon.

continue.....

ananyaś cintayanto mam ye janah paryupasate
tesam nityabhiyuktanam yoga-ksemam vaamyaham . (BG 9.22)

Bhagavan said in Bhagawad-Gita, 'You should remember and meditate on me exclusively with devotion and I will maintain and protect you always.' Mahabharata is nothing but the evidence of this very shloka. Krishna protected the Pandavas in the most abominable and controversial situtaions. The lives of Pandavas are the proof of this shloka. To cite a couple of examples- When Bhisma took a vow to kill Pandavas with just five arrows, Krishna protected them. When Karna aimed Narayana-astra towards Pandavas then He protected them. When Bhima killed Duryodhna with treachery, Lord Balrama became very angry and ran after Bhima to kill him. Then it was Shri Krishna who protected Bhima. Uttara's child in her womb was protected by Him from the heat of Aswatthama's Brahma-astra.